अडूसा और उसके सौ उपयोग

आयुर्वेदाचार्य
पं० गंगाप्रसाद गार्गेय

प्रकाशक :—

मेडिकल पुस्तक भवन,
गोला दीनानाथ, वाराणसी ।

प्रथम संस्करण

मूल्य—२·५० रुपये

मुद्रक :—
बैजनाथप्रसाद
कल्पना प्रेस
रामकटोरा रोड, वाराणसी

विषय-सूची

उदर-विकार

वात विकार

अडूसा और उसके सौ उपयोग

अडूसा या वासा, जिसे ठेठ भाषा में रूस या रूसा कहते हैं, एक सुपरिचित क्षुप या पौधा है। अडूसा भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। बंगाल के सभी स्थानों में, मध्यभारत में, उत्तर-प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र तथा हिमालय की तलेटी में ४००० फीट ऊँचे प्रदेशों में यह अधिकता से होता है। पुराने खंडहरों, टीलों, ऊसरों, जंगलों, खेतों और नदियों के किनारे यह प्रचुरता से पाया जाता है। अनेक स्थानों पर गंगा और यमुना के तटों पर इसके बड़े-बड़े जंगल हैं।

यह गुडूच्यादि वर्ग की औषधि है। पाश्चात्य द्रव्य-गुण-विज्ञानानुसार यह वासादि वर्ग (Acanthaeeau) की प्रथम औषधि है। इस श्रेणी की औषधियों के पत्ते सम्मुखवर्ती उपपत्र-रहित, पुष्प व्याघ्र-मुख के समान (सिंहस्य), पुष्प बाह्य एवं अन्तरकोष के दल ५-५, पुंकेशर २ या ४ तथा गर्भाशय २ खण्डों में विभक्त होता है।

क्षुप जाति की सर्वसुलभ अत्यन्त गुणकारी यह दिव्य वनौषधि प्रायः सर्वसाधारण में सुपरिचित है। पूर्वाचार्यों ने लाल पुष्प या ताम्रपुष्प वासा का उल्लेख किया है, जिसे चिकित्सा-कार्य के लिए श्रेष्ठ माना है तथा जिसका प्रयोग वे रक्तपित्त रोग

में करते थे किन्तु अब वह अलभ्य-सा है और काला वासा भी बहुत कम मिलता है। सफेद वाशा ही सर्वत्र सुगमता से प्राप्त है।

अड़ूसा के क्षुप ३ से १० फीट तक ऊँचे होते हैं। कहीं-कहीं इसके पुराने क्षुप २० फीट तक ऊंचे देखे गए हैं। बँगले, मकान, बाग-बगीचा, खेत आदि के चारों ओर तथा वृक्षों के थालों में इसकी वाड़ भी लगाई जाती है। इसकी पत्तियाँ पशु नहीं खाते, इसलिए इसकी वाड़ की आड़ में वृक्ष सुरक्षित रहते हैं।

अड़ूसे का तना दृढ़ और ठोस होता है और जड़ के ऊपर भूमि के पास से ही शाखायें, उपशाखायें निकलनी प्रारम्भ हो जाती हैं, जिससे एक छोटी झाड़ी-सी बन जाती है, जिसके झुण्ड के झुण्ड बनते चले जाते हैं।

अड़ूसा के पत्ते सम्मुखवर्ती ४ से ८ इञ्च तक लम्बे और डेढ़ से ३ इञ्च तक चौड़ तथा नोकदार जामुन के पत्तों के समान होते हैं। पत्तों के दोनों ओर के पृष्ठभाग चिकने और कुछ खुरदुरे-से होते हैं। पत्तों से एक प्रकार की तेज गन्ध आती है, इसीलिए संस्कृत में यह 'वासक' कहा जाता है। पत्तों को पानी में पकाने से एक प्रकार का पीला रंग निकलता है, यदि इसमें थोड़ी नील मिला दें तो सुहावना नीला हरा रंग बन जाता है।

कहीं-कहीं किसान धान बोनेवाले खेतों में हल चलाने से पहले अड़ूसा के पत्ते बिखरा कर जोत देते हैं, इस प्रकार वे पत्ते मिट्टी में मिलकर उन घासों को नष्ट कर देते हैं जो फसल के लिए हानिकारक होती हैं इससे प्रमाणित होता है कि फसल बोने से पहले यदि इसकी पत्तियाँ खेतों में मिला दी जायँ तो फसल

को नुकसान पहुँचानेवाली घासें व खरपतवार उत्पन्न नहीं होंगी तथा फसल अच्छी होगी—साथ ही पत्तियों के सड़कर भूमि में मिल जाने से खेत की उर्वराशक्ति बढ़ जायगी। गाँवों के बहुत-से किसान जिनके पास कम पशु होते हैं, अडूसे और चकवड़ के हरे पौधों को खाद के गड्ढों में डाल कर उस पर गोबर की तह लगाते हुए कम्पोस्ट खाद बनाते हैं जो बहुत उपजाऊ खाद प्रमाणित हुई है।

अडूसे के कीटाणुनाशक गुणों से परिचित बहुत-से व्यक्ति वस्त्रों एवं पुस्तकों में इसके पत्ते रखकर कीट लगने से उनकी रक्षा करते हैं। अडूसा के पत्तों में फलों का पाल बहुत अच्छा उठता है, न तो वे सड़ते हैं और न उनमें फफूँद लगती है। उत्तर-प्रदेश और बंगाल के देहातों में सभी लोग प्राय: अडूसा की पत्तियों में ही आम का पाल रखते हैं जिससे उनका रङ्ग और सुगन्धि अच्छी हो जाती है। शरीफा और केला आदि फलों का भी पाल इसके पत्तों में रखा जाता है।

पुष्प—अडूसा के फूल शाखाओं के अग्र भाग पर गुच्छों के रूप में लगते हैं। फूलों का आकार सिंह के खुले हुए मुख के समान होता है, इसीलिए इसे संस्कृत में 'सिंहास्य' कहा जाता है। यह फूल गुच्छों में सम्मुखवर्ती लगते हैं।

वसंत ऋतु में जब फूल लगते हैं तोड़कर चूसने से शहद का स्वाद आता है। देहातों के बच्चे प्राय: इसके फूलों को तोड़कर चूसा करते हैं। मधुमक्खियाँ इसके फूलों का रस ले जाकर शहद बनाती हैं। अडूसा के फूलों के रस का शहद बहुत ही सुस्वादु

और गुणकारी होता है। अडूसा वर्ष में दो बार–वसन्त और शरद में फूलता है।

फल—अडूसा के फल लगभग पौन इञ्च लम्बे, अग्र भाग में कुछ मोटे तथा पिछले भाग में चपटे-से होते हैं।

लकड़ी—अडूसे की लकड़ी धूसर रंग की कड़ी और हल्की होती है। इस लकड़ी में पानी भीतर प्रवेश नहीं करता अतः यह पानी में नहीं सड़ती। देहातों में बहुत-से लोग कड़ियों के ऊपर अडूसा की लकड़ी की तह लगाकर छत पाटते हैं। प्राचीनकाल में अडूसे का कोयला बारूद बनाने के काम में लाया जाता था।

अडूसे का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें तीन तत्व पाये गये हैं–Alkloid नामक उपक्षार, Vasicine नामक तिक्त-धारी सत्व और Oil तेल। इसमें पाया जानेवाला उपक्षार रक्त की गति को ढीला करता है और हृदय की गति को सामान्य अवस्था पर लाता है। यह उपक्षार और भी हृदय के रोगों को दूर करता है और वायुनलियों को सामान्य रूप से प्रशस्त करता है। गुर्दे की भयंकर पीड़ा में जिसे अंग्रेजी में Bright Disease कहते हैं, में चमत्कारिक ढंग से लाभ पहुँचाता है।

विभिन्न भाषाओं में अडूसा के नाम :

संस्कृत—वासक, वासा, सिंहिका, रामरूपक, वैश्वमाता, कसनोत्पटनः, वृषः, सिंहास्य।
हिन्दी—अडूसा, रूस, रूसा, बिसोटा
मराठी—अडूलसा।

गुजराती—अरुडुंसो
बंगाली—वासक, बंगाल में इसे वासन्ती फुलेर गाछ, छोटा वासक और अरुसा भी कहते हैं।

अंग्रेजी—मलाबार नट ट्री (Malabar nut Tree)
लैटिन—Adhatoda vosika (एधाटोडा वसीका)

आयुर्वेद मतानुसार गुण-धर्म :

वासको वात कृत्सर्य: कफ पित्तास्त्र नाशन:।
श्वास कास ज्वर छर्दि मेह कुष्ट क्षया पहः॥
वासा स्वादु सस्तिक्रो हिमः पित्त हरो लघुः।
हन्ति रक्त कफ भ्रान्तस्तित द्वद्धन्वय वासकः॥

वासा वातहर, सर, कफ, रक्तपित्तनाशक, श्वास, कास, ज्वर, छर्दि, मेह, कोढ़ और क्षयनाशक है। यह तिक्त कसैला शीत वीर्य, पचने में हल्का (लघु), हृदय को हितकारी, स्वर के लिए उत्तम तथा खाँसी, श्वास, रक्त पित्त, क्षय, कफ-विकार, पित्त-विकार और क्षयज कासनाशक है।

पुष्प—अडूसा के पुष्प तिक्त और पाक में कटु हैं तथा कास, क्षय और कफ-पित्तनाशक हैं।

छाल व पत्ते—अडूसा की छाल में कड़ुवाहट होती है—छाल और पत्ते दोनों दीपन, रेचन और आमनाशक हैं, अतएव इनका उपयोग पुरातन संग्रहणी और कफ-विकारों पर उत्तम गुण-कारी है। छाल या पत्तों का क्वाथ कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, ज्वर-

जन्य अशक्ति तथा प्रसूति रोगों पर अच्छा असर करता है। रक्त-पित्त, क्षय और खाँसी की यह अमोघ औषधि मानी गई है। आयुर्वेद शास्त्र में कहा गया है कि—

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च।
रक्त पित्ती, क्षयी, कासी किमर्थंम सीदति॥

अर्थात् जब तक संसार में अडूसा विद्यमान है तब तक जीवन की आशा करने वाले रक्तपित्त, क्षय, कास (खाँसी) के रोगी व्यर्थ ही दुःख उठाते हैं।

आयुर्वेद शास्त्र में रक्तपित्त, कफज ज्वर, क्षय, कास, श्वास, विषम ज्वर, शूल, अम्लपित्त, नेत्राभिष्यन्द आदि नेत्र रोग, वातरक्त, वातज कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, शोथ, वमन आदि रोगों पर लगभग २५ वासादि क्वाथ के प्रयोग आयुर्वेद के ग्रंथों में हैं।

आयुर्वेद शास्त्र की पारिभाषिक द्रव्य गुणावली में श्लेष्म-निस्सारक औषधियों में अडूसा का प्रमुख स्थान है। जो औषधि अपने गुण-धर्म और प्रभाव से श्वास-नलिका में अवरुद्ध हुए कफ को बाहर निकाल दे, उसे श्लेष्मा-निस्सारक कहा जाता है।

यूनानी मतानुसार—यूनानी मतानुसार अडूसे के फूल पहले दर्जे में शीतल हैं। क्षय, रक्तपित्त, रक्तऊष्मा और प्रमेह में लाभ-दायक तथा पित्तनाशक हैं। इसकी जड़ खाँसी, श्वास, ज्वर, प्रमेह, कफ-पित्तजन्य मतली या वमन, पाण्डु, मूत्रदाह, सुजाक और राजयक्ष्मा का नाश करती है। बच्चों को सर्दी, खाँसी से बचाने के लिए इसके बीज गले में लटकाना गुणकारी है।

अडूसा मैथुन शक्ति को हानिकारक है।

शहद और काली मिर्च अडूसा के दर्पघ्न हैं। आधुनिक मतानुसार—

"अडूसा उत्तेजक, श्लेष्म-निस्सारक, संकोच विकास प्रतिबंधक, आक्षेपशामक (Antispasmodic) होने से इसकी क्रिया एपीकाकुआना और सेनेगा नामक अंग्रेजी औषधियों के समान है तथा इसकी योजना उनके स्थान पर पुराने कास, श्वास आदि में की जाती है।"

इसके पत्ते क्षारयुक्त होते हैं, पत्ते जलाने पर धूम्र में भी यही क्षार रहता है। यही क्षार अथवा नवसादरान्तर्गत तीव्र वायु रूप द्रव्य (एमोनिया) इसकी छाल में भी होता है। इसीलिए इसके ताजे पत्तों को सुखाकर या छाल को सुखाकर चुरुट या सिगरेट बनाकर पीने से कास, श्वास में आराम होता है। इसकी छाल के पृथक्करण से मालूम हुआ है कि पुराने वृक्ष की छाल में नवीन की अपेक्षा विशेष उपर्युक्त द्रव्य अधिक प्रमाण में रहता है अतः औषधि कार्य में उसे ही लेना चाहिये।

पत्ते और छाल के गुणों को देखने से मालूम हुआ कि दोनों का मिश्रण कर काम में लाना और भी अच्छा होता है। इसके पत्ते, फूल और मूल—इन तीनों के गुणों में किंचित् भेद है।

फूल कटु, तिक्त, ज्वरघ्न, मूत्रल, रक्त की उष्णता कम करने वाले तथा संकोच विकास प्रतिबंधक हैं। इसका ज्वरघ्न धर्म उस ज्वर में अच्छी तरह दिखाई देता है जो विषम या चढ़ने-उतरनेवाला है।

मूल—ज्वरघ्न, मूत्रल, श्लेष्म-निस्सारक, नियतकालिक ज्वर प्रतिबंधक, कृमिघ्न और कोथ-प्रशमन है। पत्ते और मूल की अपेक्षा फूल में आक्षेप-निवारक धर्म की अधिकता है। पत्तों की अपेक्षा में मूल में श्लेष्म-निस्सारक धर्म अधिक है। कफ को पतला करना तथा खाँसी के वेग को कम करना—ये दो धर्म प्रधानतया अडूसा में पाए जाते हैं। इसके रस में पीपल का चूर्ण मिलाने से इसके गुण-धर्म की वृद्धि होती है। नूतन कफजन्य रोगों की अपेक्षा यह जीर्ण कफ रोगों में अधिक उपयुक्त होता है। जीर्ण कफ रोगों में प्रायः हृदय में शैथिल्य आ जाता है वह इसके मूल के प्रयोग से दूर हो जाता है।

क्षय में पत्तों का स्वरस देने से रुका हुआ कफ बाहर निकलने लगता है। अंग दाह तथा चढ़ने-उतरनेवाला ज्वर दूर हो जाता है। वेश्यागामी लोगों को प्रायः एक प्रकार की खाँसी होती है इसे दूर करने के लिए अडूसा पत्र स्वरस में कबाब चीनी का महीन चूर्ण डालकर सेवन करना लाभकारी है। नकसीर, नेत्राभिष्यन्द, शीत ज्वर, आमवात, अतिसार, उदर कृमि; खुजली आदि में, संक्रामक रोगों में इसके पत्तों और जड़ की छाल उपयोगी है। इसके पत्तों और शाखाओं को उबाल कर उस पानी से बच्चों को स्नान कराया जावे तो उन्हें "खुजली आदि दूषित कीटाणु-जन्य रोग नहीं होते"।—डा० देसाई

अडूसा में कृमिनाशक अपूर्व शक्ति है। इसका परीक्षण इस प्रकार किया गया है। तालाब के थोड़े पानी को जो छोटे-छोटे कीटों से युक्त था ले लिया गया फिर उसमें अडूसा के पत्तों का

रस डाला गया तो उसमें सब कीड़े मर कर उतराने लगे। लाल मकड़ी जो चाय की खेती को नुकसान पहुँचाती है वह भी अडूसा स्वरस के प्रयोग से मर जाती है। यह भी एक अनुभव-सिद्ध बात है। अतः जहाँ कीड़े-मकोड़े दुखदायी हों हमें चाहिए कि इसके स्वरस को फौवारे द्वारा छिड़कें, फिर इन कीड़ों का विनाश हो जायगा।

कफ प्रधान कास, श्वास में और जुकाम तथा रक्तस्राव, रक्तवमन की व्याधियों में अडूसायुक्त औषधियों की योजना के अतिरिक्त, उक्त रोगों की अन्य औषधियों में अडूसा-पत्र-स्वरस और अडूसे की छाल का अनुपान के रूप में प्रयोग किया जाता है।

इण्डीजिनिस ड्रग कमेटी आफ इण्डिया की रिपोर्ट है कि "अडूसा ब्रोंकाइटिस (श्वास-नलिका शोथ और कास) तथा श्वास पीड़ित रोगियों के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है, किन्तु क्षय के रोग को नष्ट करने के सम्बन्ध में जो बड़ी प्रशंसा की जाती हैं, वह बहुत सन्देहास्पद है।"

'फार्माकोपिया इण्डिया' के लेखक ने वासा की श्वास रोग पर विशेष प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "जिस कास के साथ ज्वर हो, उसमें यह उतना लाभ नहीं करता।" किन्तु हमारे आयुर्वेदिक चिकित्सकों का यह अनुभवपूर्ण कथन है कि ज्वर-सहित कास-श्वासवालों को भी इससे विशेष लाभ होता है। किन्तु यह ज्वर वातजन्य नहीं होना चाहिए।

'इण्डियन जर्नल मेडिकल रिसर्च' में लिखा है कि "अडूसा में तिक्तक्षारीय (Vasicine) जो उपक्षार होता है वह रक्त की गति को ढीला करता है और हृदय-गति को सामान्य (Normal) स्तर पर ले आता है। यह उपक्षार और भी हृदयसम्बन्धी रोगों का नाशक है तथा वायु-नलिकाओं को साधारणतया फैला देता है। इसके पत्तों का रस कफ के विकारों पर लाभदायक है। यह कफ को ढीला कर देता है, जिससे बिना किसी कष्ट के कफ बाहर फेंका जा सकता है।"

मेजर बसु और डा० कीर्तिकर के अनुसार—वासा वात-नलिका प्रदाह, रक्तविकार, कुष्ठ, हृद्रोग, तृष्णा, श्वास, ज्वर, वमन, स्मरणशक्ति की कमी, क्षय, पाण्डु, मुखरोग, मूत्रकृच्छ्र और श्वेत प्रदर में लाभकारी है तथा इसके पत्ते ऋतुस्राव को और फूल रक्त-गति को नियमित करने वाले तथा विशेषतया वातनलिका-प्रदाह में उपयोगी हैं।

इसके पत्तों का रस आमातिसार और रक्तातिसार में विशेष लाभकारी है। ताजे पत्तों को पानी में औटाकर पिलाने से कफ-जन्य कास नष्ट होता है। इसके पके हुए पत्तों को पानी में उबाल कर उसकी भाप का सेक करने से अथवा उस उबले हुए जल में कपड़ा भिगोकर निचोड़ कर सेंक देने से सन्धिवात (जोड़ों का दर्द) तथा वेदनायुक्त शोथ पर परम लाभ होता है। इसके फूल, पत्र या मूल को सोंठ के साथ सेवन कराने से कम्प ज्वर, वातक्षय, कास, श्वास तथा अन्यान्य फुफ्फुस में व्याप्त श्लेष्म रोगों में लाभ होता है।

सर आर० एल० दत्त का कहना है कि लाल फूलवाला वासा अधिक उपयोगी है। इसका फांट बनाकर खांसी और क्षय में सेवन कराना बहुत लाभकारी है। इसके पत्तों और फूलों के प्रवाही घनसत्व को उपयोग में लाना अधिक अनुकूल होता है।

सर्जन मुकुर्जी का कथन है कि 'श्वास में वासारिष्ट का अच्छा असर होता है। यदि इसकी ३-४ मात्रायें देने पर भी लाभ न हो तो एक मात्रा कनकासव की वासारिष्ट में मिलाकर प्रयोग करने से शीघ्र लाभ होते देखा गया है।

एक छोटा अडूसा और होता है, जिसका क्षुप छोटा होता है और बागों में लगाया जाता है। इमें लेटिन में जस्टीसिया पिक्टा (Justicia picta) कहते हैं। इसके पत्ते सफेदी-मायल हरे रंग के छोटे-छोटे होते हैं। श्वेत किरमिजी रग के फूल प्राय: सर्वदा फूलते रहते हैं। इसके गुण-धर्म भो उक्त अडूसा के समान ही हैं। इसमें शोथघ्न और स्नेह-गुण की विशेषता है। ये गुण इसके पत्तों में हैं। पत्तों की पुल्टिश बनाकर, अन्दर दूध की रुकावट से होनेवाले स्तन-शोथ पर बाँधने से दाह-युक्त शोथ दूर होती है। अन्य किसी भी शोथ पर इसके पत्तों को नारियल के फल के जल में पीसकर बाँधने से शोथ शीघ्र उतर जाती है। इसके स्वरस की मात्रा १० से २० बूंद है। कास में इसके स्वरस में १ से ४ रत्ती सुहागे की खील मिलाकर चटाने से लाभ होता है। काला अडूसा (Justicia Jendarnsa) नाम की जो अन्य वनौषधि है, वह अडूसा नहीं है, वह वास्तव में नील निगुंडी या ऊदी संभालु है।

अड़ूसा कफजन्य विकारों—कास, श्वास तथा फुफ्फुस-व्याधियों एवं रक्तपित्त की एक अनुपम वनौषधि है। इसके सिवा अन्य बहुत-से रोगों में आयुर्वेद शास्त्र में इसकी योजना की गई है। सर्वप्रथम हम आयुर्वेदिक ग्रंथों में लिखित अड़ूसा के विशिष्ट योग लिखते हैं। उसके बाद अड़ूसा तथा अड़ूसा के संयोग से बनने वाली विभिन्न रोगों में प्रयुक्त होनेवाली औषधियों का उल्लेख करेंगे।

१. वासाहिम (रक्तपित्त तथा ज्वर के लिए)

वासा के एक तोला ताजे पत्तों को कूट कर, ६ तो० जल में भिगोकर, रात को ओस में रख दें। प्रातः सूर्योदय से पूर्व इसे मसल-छानकर, इसमें १ तोला से ४ तोला तक शक्कर या मिश्री और शहद ६ माशे से १ तोला तक की मात्रा में मिलाकर (चाहें तो इसमें पाव-आध पाव गोदुग्ध भी मिला सकते हैं) पीने से रक्तपित्त और पित्त-कफ-ज्वर में शीघ्र लाभ होता है।

वासाहिम या कोई भी हिम बनाने के लिए यथासम्भव मिट्टी का नया पात्र लेना चाहिए। मिट्टी का पात्र न होने पर काँच, चीनी मिट्टी या स्टेनलेस स्टील का पात्र लें। खुले स्थान में जहाँ ओस पड़ती हो, वहीं हिम-पात्र रखना चाहिए। यदि धूल-मिट्टी उड़कर गिरने की या कीट आदि पड़ने की सम्भावना न हो तो पात्र का मुख खुला ही रखना चाहिए अन्यथा किसी पतले स्वच्छ कपड़े या छलनी इत्यादि से ढक देना चाहिए।

फांट या क्वाथ (काढ़ा) की अपेक्षा हिम में शीतलता और सौम्यता विशेष होती है।

२. वासा पुटपाक—रक्तपित्त, ज्वर, खांसी और क्षय में ।

अडूसा के ताजे पत्तों को कूटकर गोला-सा बना लें। फिर उसपर केले या एरण्ड के हरे पत्ते लपेट कर ऊपर से कपड़ा लपेट दें। कपड़े पर गोबर-युक्त गीली मिट्टी का एक अंगुल मोटा लेप कर ऊपर से सूखी राख छिड़ककर कंडों की आग में दबा दें। मिट्टी लाल हो जाने पर सम्पुट को निकाल लें और ठण्डा होने पर ऊपर की मिट्टी, कपड़ा, पत्ता हटाकर एक मोटे मजबूत स्वच्छ कपड़े में गोले को रखकर उसका रस निचोड़ लें। ६ माशे से २ तोले तक की मात्रा में यह रस लेकर उसमें ६ माशे से एक तोले तक शहद मिलाकर पीने से रक्त पित्त, कफ-पित्त, ज्वर, खाँसी, जुकाम तथा क्षय में विशेष लाभ होता है।

३. वासा क्वाथ–ज्वर खाँसी, रक्तपित्त तथा रक्तार्श में

वासा के पत्ते, जड़ की छाल और फूल प्रत्येक २-२ सेर लेकर २० सेर जल में पकायें। १० सेर जल शेष रहने पर उतार मल कर छान लें। इस छने हुए क्वाथ जल में उक्त तीनों द्रव्य १-१ सेर लेकर पुनः पकायें। आधा जल शेष रहने पर, मलछान कर पुनः पत्ते, मूल-छाल और फूल प्रत्येक आध-आध सेर डालकर पकावें। आधा जल शेष रह जाने पर छान कर बोतलों में भरकर रख दें। एक से ढाई तोला तक की मात्रा में शहद या मिश्री

मिलाकर दिन में ३ बार यह क्वाथ पिलाने से खाँसी, ज्वर, ऊर्ध्वाङ्ग, रक्तपित्त तथा रक्तार्श में आशातीत लाभ होता है।

४. वासा-शबंत—जुकाम,खाँसी और गले की खराश में

(१) अडूसा के पत्तों का रस एक सेर और ४ सेर खाँड़ एकत्र मिलाकर पकायें। शबंत की चाशनी आने पर उतार कर ठण्डा होने पर बोतलों में भर लें।

(२) वासा पत्र एक सेर, मुलहठी एक पाव, छोटी कटेली का पंचांग १० तोले—तीनों को जौकुट कर ६ सेर जल में पकायें। आधा जल शेष रहने पर उसमें कूट मीठा, गावजबाँ, छोटी पीपल, काकड़ासिंगी १-१ तोला, पोहकर मूल और भारंगी ६-६ माशे कूट-पीसकर मिलाकर पुनः पकायें। क्वाथ जल आधा शेष रहने पर उतार कर छान लें और डेढ़ सेर मिश्री डालकर फिर पकाकर शबंत योग्य चाशनी बनाकर बोतलों में भर लें।

दिन में ३-४ बार १ तोला से ५ तोले तक की मात्रा में यह शबंत सेवन करने से खाँसी, जुकाम और गले की खराश आदि समस्त कफ विकार शीघ्र दूर होते हैं। इस शबंत के प्रयोग से कफ-स्राव भली-भाँति होने लगता है। कास, श्वास और क्षय में कफ को बाहर निकालने के लिए यह शबंत बहुत ही उपयोगी है।

(३) अडूसे की जड़ की छाल एक सेर लेकर ८ सेर जल में पकाकर चतुर्थांश क्वाथ रहने पर मोटे कपड़े या फिल्टर से छान कर पुनः कलईदार कड़ाही या भगोने आदि किसी कलईदार पात्र

में डालकर ४ सेर चीनी मिलाकर यथाविधि शर्बत की चाशनी बनाकर ठंडा होने पर बोतलों में भर लें।

२ से ४ तोले की मात्रा में समान भाग जल मिलाकर, दिन में २-३ बार यह शर्बत पीने से खाँसी, श्वास, प्रतिश्याय (जुकाम), रक्तपित्त, रक्तप्रदर, रक्तार्श आदि रोगों में केवल इसी शर्बत को अथवा अन्य औषधियों के अनुपान रूप में लेने से यथेष्ट लाभ होता है।

५. वासा अर्क—खाँसी और राजयक्ष्मा में

अड़ूसा के पत्ते एक सेर, फूल १० तोले—दोनों को कुचल कर किसी पात्र में भर कर १० सेर जल में रात भर भीगने दें। सबेरे एक जोश देकर ४ सेर गोदुग्ध मिलाकर भवका (नाड़ी-यंत्र) द्वारा ५ सेर अर्क उतार लें और बोतलों में भर कर रख दें।

२ से ५ तोले की मात्रा में दिन में २-३ बार यह अर्क पीने से जीर्ण कास (पुरानी खाँसी) तथा राजयक्ष्मा की प्रथम एवं द्वितीय अवस्था में अत्यन्त लाभ होता है।

६. वासावलेह–खाँसी, श्वास, रक्तपित्त आदि में

(१) २ सेर वासा की जड़ की छाल को १६ सेर जल में पकावें। ४ सेर जल शेष रहने पर छानकर, एक सेर चीनी डालकर पुनः पकाकर चाशनी बनायें। गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतार कर पीपल का चूर्ण एक पाव, ताजा घी एक पाव और शहद एक सेर मिला दें।

आधा तोला से एक तोला तक इस अवलेह को प्रातः-सायं चाटने से सब प्रकार की खाँसी, श्वास, रक्तपित्त, प्रदर आदि में पूर्ण लाभ होता है। पुरानी कफ-युक्त खाँसी की यह अमोघ औषधि है।

(२) वासावलेह–खाँसी, श्वास, रक्तपित्त आदि में

२ सेर अडूसा की जड़ को जौ-कुट कर १६ सेर जल में पकावें। २ सेर जल शेष रहने पर छानकर, २ सेर चीनी मिलाकर चाशनी बना लें। गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतार कर पीपल का चूर्ण और घी एक-एक पाव मिलाकर किसी स्वच्छ पात्र में रख दें।

६ माशे से एक तोले तक प्रातः-सायं शहद या अन्य उचित अनुपान के साथ इस अवलेह का सेवन करने से सब प्रकार की खांसी, श्वास, रक्तपित्त, रक्तप्रदर आदि में लाभ होता है। पुरानी कफज खाँसी की यह अचूक औषधि है। पुराने कफज रोगों में श्वासनलिका में सूजन आ जाती है और हृदय के अन्दर बहुत शिथिलता उत्पन्न हो जाती है—इस अवस्था में यह अवलेह बहुत गुणकारी है। बच्चों की कुकुर खाँसी में भी माशा-डेढ़ माशा की मात्रा में दिन-रात में चार बार यह अवलेह शहद के साथ चटा देने से कुछ दिनों में खाँसी निर्मूल हो जाती है।

(३) वासावलेह—अडूसा के ताजे हरे पत्तों को धोकर इमायदस्त्र में कूट कर निचोड़ कर रस निकाल लें। एक सेर रस में एक सेर शक्कर या मिश्री डाल कर पकायें। जब अवलेह जैसा गाढ़ा हो जायं, तब नीचे उतार लें और उसमें बंशलोचन,

काकड़ासिंगी, छोटी पीपल का चूर्ण १-१ तोला साथ ही ढाई तोला गाय का घी मिला लें। ठडा होने पर पाव भर शहद मिलाकर चौड़े मुँह की शीशी या अमृतवान में भर कर रख लें।

अवस्थानुसार ३ माशे से २ तोले तक की मात्रा में इस अवलेह का सेवन करने से हर प्रकार की खाँसी नष्ट हो जाती है। पुरानी खाँसी और क्षय की खाँसी, श्वास, हिचकी, रक्त-पित्त, कफ, खाँसी के साथ रक्त जाने में लाभदायक है। यह अवलेह कफनाशक और त्रिदोषहर है।

(४) वासावलेह—पुटपाक विधि से या पत्तों को कूटकर निकाला हुआ वासा का स्वरस ६४ तोला, शक्कर ३२ तोला, तथा पीपल का चूर्ण और घी ८-८ तोले एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकायें। लेहवत् गाढ़ी चाशनी हो जाने पर उतार कर उसमें ३२ तोले शुद्ध शहद मिलाकर सुरक्षित रख लें। ४-४ माशे प्रातः-सायं तथा एक-एक माशा प्रतिदिन मात्रा बढ़ाते हुए २ तोले इस अवलेह का सेवन करने से प्रतिश्याय, खाँसी, श्वास, राज-यक्ष्मा, हृद्रोग, रक्तपित्त, अजीर्ण तथा छाती की पीड़ा में उत्तम लाभ होता है।

(५) वासावलेह—वासा के पत्ते और जड़ की छाल दोनों समान भाग सवा छै सेर कूटकर ३२ सेर जल में पकावें। जब गाढ़ा हो जाय, तब नीचे उतार कर उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कायफल, नागरमोथा, कबीला, श्वेत जीरा, हर्र, तालीसपत्र और धनिया का चूर्ण प्रत्येक ढाई-ढाई तोला मिला दें और ठंडा होने पर एक सेर शहद

मिलाकर रख लें। एक से २ तोले तक की मात्रा में गर्म जल के साथ सेवन करने से कास, स्वरभंग, यक्ष्मा, अग्निमांद्य, मूत्रकृच्छ्र, अफारा, हृद्रोग आदि दूर होते हैं।

उपर्युक्त पंक्तियों में वासा से निर्मित होनेवाले योग और आगे लिखे जानेवाले विशिष्ट योग विशेष रूप से खाँसी, जुकाम, श्वास, रक्त-पित्त, अम्लपित्त, क्षय आदि में प्रयुक्त होते हैं। अतः सामान्य पाठकों की जानकारी के लिए इन रोगों के कारण, लक्षण और पथ्या-पथ्य संक्षिप्त रूप से लिख देना उपयोगी होगा।

प्रतिश्याय (नजला या जुकाम)

जुकाम पैदा होने के २ कारण हैं (१) सद्योजनक यानी तात्कालिक और (२) चयादि क्रम-जनक-संचयादि के क्रम से उत्पन्न।

(१) तत्काल जुकाम पैदा करनेवाले कारण—मल-मूत्रादि वेग रोकना, अजीर्ण या बदहजमी होना, नाक में धूल जाना, अधिक बोलना, अधिक क्रोध, ऋतुचर्य्या के विपरीत कार्य करना, धुयें आदि से सिर को कष्ट पहुँचना, रात्रि-जागरण, अधिक सोना, बहुत अधिक पानी पीना, अधिक समय तक जल में रहना; सर्दी लगने के काम, तुषार-सेवन, अत्यन्त रोना या शोक करना—उपरोक्त १५ कारणों में से किसी भी या एक-दो-तीन कारणों से मस्तक में कफ जम जाता है। तब बढ़ा हुआ वायु जुकाम पैदा कर देता है।

(२) चयादि क्रम-जनक—वात, पित्त, कफ अलग-अलग या तीनों मिले हुए या श्लेष्मा मस्तक में संचित होकर जब अपने-

अपने कुपित करनेवाले कारणों से कुपित होते हैं, तब उसे प्रतिश्याय या जुकाम कहते हैं।

जुकाम होने से पूर्व या पश्चात् बहुत छींकें आना, सिर में भारीपन, अंगों में जकड़न, अंगों का टूटना, रोमांच होना, नाक से धुयें जैसी हवा निकलना, नाक और मुँह से पानी जैसा पतला स्राव होना—जुकाम के लक्षण हैं।

लक्षण भेद से १. वातज, २. पित्तज, ३. कफज, ४. सन्निपातज ५. दुष्ट प्रतिश्याय, ६. रक्तज प्रतिश्याय—ये छै प्रकार के प्रतिश्याय हैं।

नाक रुक जाना, नाक से पतला स्राव होना, गला, तालू और ओंठ सूखना, कनपटियों में पीड़ा होना, ज्वर बिगड़ जाना या गला बैठ जाना—ये वायु-जनित प्रतिश्याय के लक्षण हैं।

नाक से गरम और कुछ पीला कफ स्राव, शरीर दुर्बल और गरम हो जाना, शरीर का रंग पीताभ या धूसर वर्ण का हो जाना, प्यास बहुत लगना, और नाक से धूम्रयुक्त आग-सी निकलती जान पड़ना—पित्त-जनित प्रतिश्याय के लक्षण हैं।

नाक से शीतल सफेद कफ अधिक निकलना और रंग का सफेद हो जाना, नेत्र सुन्न हो जाना, सिर भारी हो जाना, तालु, ओंठ और माथे में खुजली-सी होना—ये कफजनित प्रतिश्याय के लक्षण हैं।

जो प्रतिश्याय पककर या बिना पके ही बन्द हो जाता है और फिर होता है तथा पुनः बन्द हो जाता है तथा जिसमें वात,

पित्त और कफ तीनों के लक्षण जान पड़ते हैं—वह त्रिदोषज प्रतिश्याय है ।

जिसमें नाक कभी तर हो जाय, कभी सूख जाय, कभी बन्द हो जाय, कभी खुल जाय, नाक से दुर्गन्धित साँस निकले, नाक को सुगन्धि या दुर्गन्धि न मालूम हो—वह दुष्ट या दूषित प्रतिश्याय है ।

नाक से गरम और पीला कफ स्राव, नाक से रक्त आना, शरीर गरम, दुवला और पीला हो जावे, प्यास वहुत लगे, नाक से धुयें की-सी आग निकलती जान पड़े, आँखें लाल हो जायें, छाती में चोट लगने का-सा दर्द हो, मुँह से दुर्गन्धित सांस निकले, नाक की घ्राणशक्ति नष्ट हो जाय, (सुगन्धि-दुर्गन्धि का ज्ञान न रहे)—ये रुधिर प्रतिश्याय के लक्षण हैं ।

सभी प्रतिश्याय संयम का पालन न करने, अनुचित आहार-विहार और उचित चिकित्सा के अभाव में कालान्तर में असाध्य हो जाते हैं । जुकाम में कफ के कारण सफेद, चिकने और वारीक कीड़े होते हैं । जुकाम वालों का मस्तक भीतर से कफ से लिपा रहता है । माथा भारी, स्तब्ध और शीतल होता है । आँखों के कोयों और मुँह पर सूजन आ जाती है ।

प्रतिश्याय के बहुत बढ़ जाने पर मनुष्य बधिर, अंध, घ्राण-शक्ति विहीन, शोष, मन्दाग्नि और खाँसी का रोगी हो जाता है । जुकाम शीघ्र न पकने और शीघ्र आराम न होने पर, आँख, कान, नाक के रोग, कंठ और आमाशय में दर्द, आँतें छिलने का रोग, पसली की सूजन और पीड़ा, अपस्मार, सिर दर्द या आधा

शीशी, गहरी नींद का रोग, सिर घूमना, आँखों के आगे अंधेरा छा जाना इत्यादि विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

खाँसी

जब मनुष्य के मुख से कांसे के फूटे हुए बर्तन जैसी खों-खों की आवाज निकलती है, तो उसे खाँसी कहा जाता है। संस्कृत में खाँसी को 'कास' और अंग्रेजी में 'कफ' कहते हैं। खाँसी का विशेष सम्बन्ध फेफड़ों से है। फेफड़ों के सिवा जो अंग श्वसन-क्रिया में फेफड़ों के सहायक हैं, उन अंगों से भी खाँसी का सम्बन्ध है। फेफड़े खाँसी-द्वारा अपने कष्ट को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। फुफ्फुस तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाले श्वास-यन्त्रों में जब कुछ विकार हो जाता है, प्राय: तभी खाँसी आती है।

खाँसी उत्पन्न होने के कारण

श्वास के साथ वायु-नली में धूल, धुआँ के जाने से, जल्दी-जल्दी खाने-पीने से श्वासनली में खाने-पीने की चीजें प्रविष्ट हो, जाने, रुक्ष पदार्थ अधिक खाने, मल, मूत्र और छींक आदि के वेगों को रोकने, शक्ति से अधिक परिश्रम करने से कुपित हुआ प्राणवायु उदानवायु से मिलकर फूटे हुए कांस के बर्तन की-सी आवाज करता हुआ बाहर निकलता है, तो उसे खाँसी कहते हैं। हिकमत के मत से गर्मी-सर्दी लगने, फेफड़ों में घाव या फुंसियाँ होने, श्वासनली में धूल, धुआँ के प्रवेश, खट्टी, कसैली, तीक्ष्ण चीजें खाने, असावधानी से खाद्य-पदार्थों के श्वास-नली में आ जाने, श्वासवाहक यंत्रों के निरोग रहने पर भी आमाशय, प्लीहा

या यकृत (लीवर) में विकार होने से खाँसी उत्पन्न हो जाती है।

फेफड़ों में घाव होने से क्षतज खाँसी होती है। वायु के प्रकोप से वातज, पित्त (गर्मी) के प्रकोप से पित्तज और शीत-प्रकोप से कफज खाँसी होती है।

एलोपैथी मतानुसार शरीर की निर्बलता, अतिमैथुन, जुकाम होने, सर्दी लगने, तेज चीजें सूँघने, ऋतु-परिवर्तन, दूषित वायु खाँसी के कारण हैं।

हारीत संहिता के अनुसार बिना वायु के श्वास-रोग नहीं होता, बिना कफ के खाँसी नहीं होती, बिना रक्त के पित्त नहीं होता और बिना पित्त कुपित हुए क्षय नहीं होता।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट इत्यादि सभी आचार्यों ने ५ प्रकार की खाँसी लिखी है—वातज, पित्तज, कफज, क्षतज और क्षयज।

वातज खाँसी के कारण – रुक्ष, शीतल, कसैले पदार्थों के अधिक सेवन, कम खाने, एक ही रस लगातार खाते रहने, अत्यधिक मैथुन, मल-मूत्रादि वेग रोकने तथा अधिक परिश्रम से वातज खाँसी पैदा होती है।

वातज खाँसी में हृदय, पसली, छाती, कनपटी और सिर में दर्द होता, कुपित वायु छाती, कंठ और मुख को शुष्क करती, रोमांच होता, ग्लानि होती, खाँसी की आवाज तेज होती, मुखकान्ति नष्ट हो जाती, बल, ओज, इन्द्रिय-बल, स्वर क्षीण हो जाता, गला रुँधता या बैठ जाता, स्वर फटा-सा रहता, आलस्य बना रहता, सूखा कफ गले में फँसा रहता, सूखी खाँसी आती है,

जिसमें कफ तनिक भी नहीं निकलता, निकलता है तो बड़ी कठिनाई से निकलता है। कफ के सूख जाने या कम हो जाने का कारण कुपित वायु है।

चिकने, खट्टे, नमकीन और गर्म पदार्थ खाते ही वातज खाँसी शान्त हो जाती है, लेकिन भोजन के पचते ही वायु फिर सबल हो जाता है और फिर खाँसी आने लगती है।

पित्तज खाँसी—कड़ुवे, गर्म, दाहकारक खट्टे भारी पदार्थ अधिक खाने तथा आग और धूप के अधिक सेवन से पित्तज खाँसी पैदा होती है।

पित्तज खाँसी के मुख्य चिह्न ये हैं—छाती या गले में जलन होना, हल्का-हल्का ज्वर रहना, मुख सूखना, मुख का स्वाद कड़ुवा रहना, प्यास बहुत लगना, खाँसते समय गर्मी लगना, कड़ुवा और पीला कफ निकलना।

कफज खाँसी—भारी अभिष्यन्दी मीठे पदार्थ अधिक खाने, परिश्रम न करने और दिन में सोने (ग्रीष्म-ऋतु के सिवा) से कफज खाँसी पैदा होती है।

कफज खाँसी के मुख्य लक्षण—मुँह में कफ भरा रहना या गला कफ से भरा जान पड़ना, सिर में दर्द होना; गले में खाज-सी लगना, बहुत खाँसने से गाढ़ा-गाढ़ा कफ निकलना।

क्षतज खाँसी के कारण—अत्यधिक परिश्रम, सामर्थ्य से अधिक बोझ उठाना, अधिक मैथुन करना, बहुत जोर से चिल्लाना, बहुत पैदल चलना, पशुओं से जोर करना, अपने से अधिक बलवान से लड़ना—इन कारणों से जब छाती या फेफड़ों

में आघात लगता है या शोक होने से उनमें जख्म हो जाते हैं, उस समय खाँसी आने पर खून मिला कफ विशेष आने लगता है।

क्षतज खाँसी के लक्षण– खाँसी में रक्त मिश्रित कफ आना, कंठ में वेदना, गला खरखर करना, छाती में सुई चुभने का-सा दर्द, छाती में चीरने जैसी पीड़ा, छाती में दर्द, जोड़ों में पीड़ा या हड़फूटन, ज्वर-वेग, तृषाधिक्य, तीव्र-श्वास, स्वर-भेद पार्श्व-शूल, कंपन, पीठ और कमर जकड़ जाना, बल-वीर्य का नष्ट हो जाना और क्षीण हुए रोगी को रक्तमिश्रित पेशाब होना।

हिकमत के मतानुसार अधिक खाँसी आने, चोट या धक्का लगने, किसी रग का मुख खुल जाने या टूट जाने और फेफड़ों में घाव हो जाने से सिल (उरःक्षत या क्षयज खाँसी) की उत्पत्ति होती है।

क्षतज खाँसी में जब शरीर का क्षय अन्तिम दशा को पहुँच जाता है और रोगी का अन्तकाल समीप आ जाता है, तब यक्ष्मा की भाँति नाखून शीतल हो जाते हैं, पाँव की पीठ सूज जाती है और कफ में फेफड़े के टुकड़े आने लगते हैं।

क्षयज खाँसी

कारण––विषम भोजन, प्रकृति-विरुद्ध भोजन, अत्य-धिक मैथुन, मल-मूत्र, अधो वायु-वेग का रोकना, बहुत चिन्ता, शोक करना, इत्यादि कारणों से मनुष्य की जठराग्नि बिगड़ जाती है। जठराग्नि की विकृति से वात, पित्त और कफ तीनों

दोष कुपित होकर 'क्षयज खाँसी' उत्पन्न करते हैं। बहुधा यह खाँसी अधिक वीर्य-नाश से होती है।

सुश्रुत के मतानुसार क्षयज खाँसी के लक्षण—शरीर में शूल, ज्वर, दाह, मोह, शक्ति-क्षीणता होती है। दुर्बल रोगी थूकता है। जब मांस क्षीण होने लगता है, तब कफ पीव मिला हुआ खून आता है।

वाग्भट् के मतानुसार दुर्गन्धित मवाद जैसा पीला, हरा और लाल कफ थूकना, पसलियाँ इधर-उधर हो जाना, हृदय गिरता-सा जान पड़ना, आप ही आप गर्मी और शीत की इच्छा होना, बहुत, खाने पर भी निरन्तर शक्ति क्षीण होते जाना, मुँह चिकना और चमकदार रहना, दाँत और नेत्र सुन्दर हो जाना और अन्त में श्वास तथा पीनस रोग हो जाना—क्षयज खाँसी के लक्षण हैं।

डाक्टरों ने भी क्षयज खाँसी जिसे वे 'थाइसिस पिल मोनेलस' कहते हैं—होने का कारण अति मैथुन, अति परिश्रम, जुकाम-सर्दी लगना और तेज चीजों की गन्ध आदि लिखा है।

क्षयज खाँसी के लक्षण—पहले बिना ज्वर और सर्दी के सूखी खाँसी आती है। कफमिश्रित या साफ खून निकलना, हाथों के तलवे सदा गर्म रहना, गले में खराश, पसुलियों में दर्द न होना या थोड़ा होना, फेफड़ों में एक प्रकार का शब्द होना, सिरदर्द, क्षुधा-नाश, उत्साहहीनना, दुर्बलता, रात में व्याकुलता, बाल झड़ना, अँगुलियों से अग्रभाग मोटे हो जाना, सवेरे और रात में खाँसी का वेग बढ़ना, परिश्रम से खाँसी बढ़ जाना और जल्दी-जल्दी श्वास आने लगना, जीभ पर सफेद लेप-सा दीखना। यदि रोगी

स्त्री है, तो उसका रजोधर्म बन्द हो जाता या अधिक होने लगता है।

नजले की खाँसी

यह खाँसी जुकाम या नजले से होती है। यह खाँसी कठिनता से आराम होती है। ढलती उम्र में यह खाँसी पैदा होने पर शायद ही ठीक होती है। जिन लोगों की धातु में गर्मी पहुँच जाती है, उन्हें प्राय: जुकाम बना ही रहता है। जुकाम ठीक न होने पर खाँसी हो जाती है। जब तक धातु रोग आराम नहीं होता, खाँसी भी नहीं जाती। क्योंकि जुकाम के कारण गले में कफ आया करता है।

खाँसी बहुत बुरा रोग है। कहावत है—'रोग का घर खासी'। खाँसी अनेक रोग पैदा करती है। खाँसी की चिकित्सा न करने से श्वास, क्षय, छर्दि (वमन), स्वर की शिथिलता, अग्निमांद्य आदि अनेक रोग हो जाते हैं। खाँसी के ही बढ़ने से प्राय: श्वास-रोग की उत्पत्ति होती है।

खाँसी में पथ्य—स्वेदन—पसीना निकलना, विरेचन, वमन, धूम्र-पान, नियमित रूप से एक समान भोजन करना और दिन में सोना पथ्य है।

खाँसी में पथ्य भोजन—जौ, गेहूँ की रोटी, साँठी या शालि चावल, पुराने चावलों का भात, छिलकारहित उड़द, मूँग, कुलथी की दाल, परवल, नेनुआ, बैंगन, गूलर, सहिजन, बथुवा, खरबूजा, केला, नरम मूली—इन सबकी सेंधा नमक के साथ बनी तरकारी,

नरम बैंगन का भुरता, गाय या बकरी का दूध, घी, मलाई, पुराना घी, मिश्री, बिजौरा नींबू, लहसुन, प्याज, अदरख, काली मिर्च, सफेद जीरा, छोटी इलायची, सेंधा नमक, शहद, धान की खील, गरम करके शीतल किया हुआ स्वच्छ जल—ये सब खाँसी में पथ्य हैं।

लाल मिर्च, खटाई, कडुवा तेल और अधिक मिर्च-मसालेदार भोजन अपथ्य है।

कुकुर खाँसो (काली खांसी या हूपिंग कफ)

यह एक विशेष प्रकार की खाँसी है। यह सामान्य खाँसो से अलग मानी जाती है। यह खाँसी प्रायः छोटे बच्चों को १० वर्ष से कम आयु के बच्चों को होती है। यह एक संक्रामक रोग है—एक से उड़कर दूसरे को लगता है। यह खाँसी होने पर बालक कुत्ते की तरह खाँसता है, इसलिए इसे 'कुकुर खाँसी' कहते हैं। इस खाँसी में बच्चे के मुँह से 'हुप-हुप' की आवाज होती है, इसलिए अँग्रेजी में 'हूपिंग कफ' कहते हैं। इस खाँसी में बच्चे को बड़ा कष्ट होता है। इस खाँसी का कारण एक विषाणु है। यह विष हवा के साथ फेफड़ों मे जाकर वहाँ के मज्जा तन्तुओं में क्षोभ उत्पन्न करता है, जिससे खाँसो और ज्वर आदि विकार होते हैं।

इसकी २ अवस्थायें होती हैं। पहली अवस्था ८—१० दिन रहती है। उस दशा में थोड़ा-थोड़ा ज्वर रहता और सूखी खाँसी आती है। खाँसते-खांसते बच्चे के मुख का रंग बदल जाता है।

दूसरी अवस्था में पहले की-सी खाँसी नहीं रहती। खाँसी उठने-पर जब तक कफ नहीं निकल जाता या कै नहीं हो जाती, बालक बहुत बेचैन रहता है, उस समय उसकी आँखें और मुँह लाल हो जाते हैं। किसी-किसी बच्चे की नाक से खून गिरने लगता है और किसी-किसी की कै में खून मिला रहता है। कफ निकल जाने पर बालक को शान्ति मिलती है। यह दूसरी अवस्था है। यह अवस्था कितने दिनों तक रह सकती है, इसका कुछ निश्चित नियम नहीं है। जब यह रोग वेग पर होता है, तब २४ घण्टे में २० से ४० बार तक खाँसी के वेग उठते हैं। जब रोग का बल घटने लगता है, तब वेग भी कम होने लगते हैं।

यह रोग बहुत दिनों में आराम होता है। किसी को ४५ दिन, किसी को ६० दिनों और किसी-किसी को इससे भी अधिक दिनों तक यह रोग चलता है।

कितने ही बालकों के सिर में खून जमा हो जाने से मूर्छा तक हो जाती है। रोग के पुराना हो जाने पर दाह और हृदय में जलन आदि उपद्रव भी होते हैं। एक वर्ष से कम आयु के बालक इस खाँसी से क्षीण होकर मर भी जाते हैं।

यह बहुत बुरा रोग है। थोड़ी-सी लापरवाही से बालक की जान जाने की आशंका रहती है। जो लोग इसे साधारण सर्दी का विकार समझकर गर्म और तेज दवायें देते हैं, वे बालकों के शत्रु हैं। ऐसी दशा में लाभ होने के बजाय कभी-कभी सूख जाने

से भयंकर परिणाम होता है। अनेक चिकित्सकों की राय है कि इस रोग में पहले वात-नाशक औषधियाँ देनी चाहिए।

कव्वे की खाँसी

कव्वा लटक जाने से भी एक प्रकार की खाँसी आती है। बहुत कमजोरी में बहुत खाँसी आने से कव्वा लटक जाता है। कव्वा लटक जाने से हर समय गले में खसखसी या सुरसुराहट-सी बनी रहती है। बच्चे को ऐसा जान पड़ता है मानो गले में कोई चीज अटक रही हो। कव्वा की खाँसी वाले को तनिक भी चैन नहीं मिलता।

यह खाँसी बिना कव्वा उठाये ठीक नहीं होती।

श्वास या दमा

जिस प्रकार खूब दौड़ने पर लगातार और जल्दी-जल्दी साँस आती है, अगर उसी प्रकार आराम से बैठे रहने पर भी साँस आवे तो उसे श्वास या दमा कहते हैं।

श्वास के कारण—तीक्ष्ण, दाहक, गुरुपाक, कब्जकारी, रुक्ष और रस-वाहिनी शिराओं को रोक कर भारीपन पैदा करने वाले पदार्थों के सेवन से, अतिशय शीतल जल पीने से और शीतल भोजन करने से, मुँह और नाक में धूल और धुँआ जाने से, अत्यन्त हवा लगने, अत्यन्त परिश्रम के काम करने, भारी भार उठाने, बहुत मार्ग चलने, मल-मूत्रादि के वेग को रोकने, बहुत उपवास करने आदि से हिचकी, श्वास और खाँसी रोग पैदा होते हैं।

महर्षि वाग्भट के मतानुसार खाँसी के बढ़ने, दोषों को कुपित करनेवाले कड़ुवे और गरम पदार्थों के खाने, आमातिसार से, छर्दि (वमन) रोग होने, विष खाने-पीने, पाण्डु रोग, ज्वर, धूल और धुँआ के नाक और मुँह में जाने, गर्म स्थान में चोट लगने और अत्यन्त शीतल जल पीने से श्वासरोग पैदा होता है।

सुश्रुत में लिखा है कि प्राणवायु अपनी प्रकृति के विरुद्ध होकर, कफ से मिल कर और ऊर्ध्वगामी होकर श्वासरोग पैदा करता है। जब वात और कफ के कुपित होने से श्वासवाही यंत्र कफ से आच्छादित हो आते हैं, तब हवा को घूमने का स्थान नहीं मिलता, कफ के कारण जब वायु का उन्मुक्त आवागमन नहीं होता, तब श्वासरोग की उत्पत्ति होती है। सारांश यह कि वायु के आने-जाने के मार्गों में कफ की रुकावट होने पर श्वास-रोग का जन्म होता है। अथवा यों समझिये कि जब श्वास-वाहक शिराओं में कफ भर जाता है और वे वायु से शुष्क होकर खुरदरी हो जाती हैं या सिकुड़ जाती हैं अथवा अधिक फैल जाती हैं, तभी श्वास-रोग होता है।

श्वास के पूर्व रूप ये हैं—हृदय में शूल, अफारा, मुख का स्वाद बिगड़ जाना तथा कनपटियों में पीड़ा।

श्वासरोग के ५ प्रकार हैं—क्षुद्र, तमक, छिन्न, महान और ऊर्ध्व

क्षुद्र श्वास—जो श्वास रुक्षता और अति परिश्रम से उत्पन्न होता है, उसे क्षुद्र श्वास कहते हैं। यह श्वास वायु को बढ़ाता, पर अन्य श्वास-रोगों की तरह रोगी को अधिक पीड़ित नहीं

करता, अन्न-पान की गति को नहीं रोकता—खाने-पीने में बाधा नहीं डालता। यह श्वासरोग साध्य होता है और उचित चिकित्सा से सुगमता से आराम हो जाता है।

तमक श्वास—तमक श्वास की स्पष्ट पहचान यह है कि तमक श्वास रोगी सो नहीं पाता। सोने या लेटने से उसे कष्ट होता है—बैठने से उसे आराम मिलता है। तमक श्वास वाला रोग बादल घिर आने पर, वर्षा होने से, पुरवा हवा चलने से और सर्दी से बढ़ता है। उसका श्वास कफकारी पदार्थों के सेवन से बढ़ता है, अतः उसे शीतल पदार्थों से कष्ट होता है। गर्म पदार्थों से कष्ट कम होता और आराम मालूम होता है।

छिन्न श्वास—छिन्न श्वास वाला रोगी रह-रह कर साँस लेता है, निरन्तर साँस नहीं ले पाता। जब वह साँस लेता है तब उसके हृदय आदि मर्म स्थानों में काटने या छेदने की-सी पीड़ा होती है उस पीड़ा के कारण उससे साँस नहीं ली जाती। नाभि के नीचे पेड़ू में अत्यन्त जलन होती है, आँखों में पानी-सा भरा रहता है, चेष्टा बदल जाती है और रोगी अनर्गल प्रलाप करता है। इस रोगी की एक आँख लाल हो जाती है।

प्रतमक या महाश्वास के लक्षण—प्राणवायु शब्द करती हुई ऊपर चढ़ती है। महाश्वास रोगी की बुद्धि नष्ट हो जाती है, स्मरणशक्ति लुप्त हो जाती है, नेत्र फटे-से या चंचल-से हो जाते हैं, मल-मूत्र रुक जाते हैं, जीभ तुतला जाती है—बोला नहीं जाता। बोलता है तो स्वर बहुत मन्द निकलता है। श्वास का

स्वर थोड़ी दूर से ही सुनाई देता है। ऐसे लक्षणों वाला रोगी कुछ दिनों में मर जाता है।

'सुश्रुत' का कथन है कि जब मनुष्य बेहोश हो जाय, पसलियों में दर्द हो, कंठ या गला सूखे, श्वास में खर्राटे की आवाज अधिक आवे। नेत्रों में शोथ और लाली हो, साँस लेते समय रोगी शिथिल हो जाय अथवा फैल या सिकुड़ जाय, तब समझो कि यह महाश्वास है।

वाग्भट ने महाश्वास रोग में कान, कनपटी और सिर में दर्द होना लिखा है। महाश्वास रोगी के नेत्र विभ्रान्त और मुख विकृत हो जाने पर वह मर जाता है।

ऊर्ध्व श्वास के लक्षण—ऊर्ध्व श्वास रोगी ऊपर की ओर लम्बी-लम्बी साँसें लेता है—नीचे की ओर साँस नहीं ले सकता। कारण यह है कि उसके पेट में वायु नहीं समाता। इस श्वास में वायु-प्रकोप अधिक होने से रोगी के नेत्र स्थिर नहीं रहते, चंचल रहते हैं। वह इधर-उधर देखता है। शरीर में अतिशय पीड़ा और व्याकुलता रहती है। जब श्वास नीचे की ओर रुक जाता है तब रोगी बेहोश हो जाता है। अगर बार-बार रोगी बेहोश होता है और बार-बार सांस रुकती है तो रोगी इसी श्वास से मर जाता है।

प्रतमक श्वास—जो श्वास मूर्च्छा और ज्वरयुक्त हो और जो शीतल आहार-विहार से शान्त होता हो, वह प्रतमक श्वास है। जो उदावर्त रोग से, धूल की धाँस जाने से, अजीर्ण से, थकान आने से, मल-मूत्रादि के वेग रोकने से उठ आता है, जो तमोगुणी

गरम पदार्थों से अत्यन्त बढ़ता और शीतल आहार-विहार से शांत हो जाता है, रोगी अपने को अँधेरे में डूबा हुआ-सा महसूस करता है, वह प्रतमक श्वास है।

श्वास-रोगी के लिए कुछ आवश्यक निर्देश—

दमे वाले रोगी को भोजन के साथ पानी बिल्कुल न पीना चाहिए। भोजन के घंटा-डेढ़ घंटा बाद ही थोड़ा-थोड़ा पानी पीना चाहिए। भोजन करके तुरन्त न सोना चाहिए और न अधिक सोना चाहिए। दिन में सोना तो और हानिकर है, क्योंकि दिन में सोने से कफ की वृद्धि होती है। यदि दमा-रोगी शराब पीने का आदी हो तो थोड़ी-थोड़ी हल्की शराब पीना लाभदायक है। छाती और छाती की पसलियों को हाथों से तथा खुरदुरे कपड़े से बिना तेल लगाए धीरे-धीरे मलना हितकर है। छाती को पहले बहुत धीरे-धीरे, फिर बाद में कुछ जोर से मलना चाहिए। दमा वाले को थोड़ा परिश्रम करना भी लाभकारी है। प्रारम्भ में थोड़ा श्रम, फिर कुछ अधिक श्रम करना चाहिए, किन्तु इतना नहीं कि श्वास फूलने लगे।

श्वास में पथ्य—श्वास में विरेचन देना, पसीना निकालना, धूम्रपान कराना तथा वमन कराना हितकर है। पुराने साठी चावल, गेहूँ, जौ, पुराना घी, बकरी का दूध और घी, शराब, शहद, परवल और कुम्हड़ा—ये सब पदार्थ पथ्य हैं। खरगोश, मोर, तीतर, बटेर, मुर्गा इनका मांस पथ्य है। बथुवा, चौलाई, मूली, बैंगन, लहसुन, नीबू, मुनक्का, छुहारा, हरड़, त्रिकटु, गोमूत्र और गरम जल पथ्य हैं।

अपथ्य—मल-मूत्र, डकार, प्यास और खाँसी के वेग को रोकना, नस्य सूँघना, गुदा में पिचकारी लगाना, अधिक परिश्रम करना, बोझ लेकर चलना, धूल का श्वास में जाना, धूप में रहना, गुरुपाक गरिष्ठ पदार्थ खाना, दाहजनक वस्तुयें, जलीय देश के पशु-पक्षियों का मांस, तेल में तली भुनी चीजें, उड़द जैसे कफकारी पदार्थों की दाल, अधिक पानी पीना, गन्दा पानी, मछली, आलू, घुइयाँ जैसे कन्दों के साग, सरसों का साग श्वास-रोग में अपथ्य है। अधिक श्रम, शोक, क्रोध, चिन्ता, रात्रि जागरण, दही, लालमिर्च, खटाई, अधिक भोजन, विशेषकर रात में अधिक भोजन—ये सब श्वासरोग में बहुत ही हानिकारी हैं।

रक्तपित्त-रोग

रक्तपित्त रोग में मुँह; नाक, कान, गुदा, लिंग, योनि और अधिक उग्ररूप होने से रोग-कूपों से रक्तस्राव होता है।

धूप में अधिक रहने, काली मिर्च, लाल मिर्च आदि तीक्ष्ण पदार्थों के अधिक खाने, क्षारीय पदार्थों के अधिक सेवन, आग के सामने अधिक समय तक बैठने इत्यादि कारणों से रस दूषित होकर पित्त को दूषित करता है। दूषित पित्त रक्त को दूषित करता है। तब दूषित रक्त रक्तवाहिनी शिराओं में आकर विपरीत मार्ग से चल कर यकृत या आमाशय या पक्वाशय की ओर जाता है। इस दूषित रक्त से मिलकर पित्त भी लाल हो जाता है। अगर रक्त आमाशय में जाता है तो ऊर्ध्वगामी (ऊपर का) रक्त-पित्त होता है यानी मुख, नाक, कान और नेत्रों से रक्त बहता है।

यदि वह पक्वाशय में जाता है, तो गुदा, लिंग या योनि—नीचे के मार्गों से रक्त बहता है, जिसे अधोग या अधोगामी रक्तपित्त कहा जाता है।

रक्तपित्त होने से पूर्व शरीर में शिथिलता, शीतल पदार्थों की इच्छा, कंठ में धुआँ-सा घुटना, वमन होना और साँस में लोहे की-सी गन्ध आना—लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

रक्तपित्त ३ प्रकार का होता है—वातज, कफज और पित्तज।

वातज रक्तपित्त में वात की अधिकता होने से रक्त काला या लाल, झागदार, पतला और रूखा निकलता है। इस अवस्था में गुदा, लिंग या योनि से रक्तस्राव होता है।

कफज रक्तपित्त में कफ की अधिकता होती है, तो रक्त गाढ़ा, पाण्डु वर्ण कुछ चिकना और पिच्छिल होता है। इस अवस्था में रक्त मुख, नाक, कान, और नेत्रों से बहता है।

पित्तज रक्तपित्त में पित्त अधिक होता है तो रक्त काढ़े की भाँति, गौमूत्र की भाँति, मोरपुच्छ या अंगारे जैसा अथवा धुआँ और अंजन के समान नीला और काला होता है।

रक्तपित्त के उपद्रव

निर्बलता, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, मद-सा रहना, शरीर का पीला पड़ना, दाह, मूर्छा, भोजन के बाद जलन होना, व्याकुलता, हृदय में पीड़ा, प्यास, गला बैठना, सिर में गर्मी, थूक

में पीब-सी आना या दुर्गन्धित पानी-सा आना, भोजन से अरुचि, अपचन और अशान्ति—ये रक्तपित्त के उपसर्ग या उपद्रव हैं।

असाध्य लक्षण—यदि रक्तपित्त का रक्त मांस के धोवन जैसा हो, काढ़े के समान या जामुन के पके फल के समान नीला-काला हो, कीचड़ के पानी जैसा हो, अथवा उसमें मेद, मवाद और खून मिले हों, मुर्दे की-सी दुर्गन्धि वाला हो, इन्द्रधनुष के रंगों क समान हो और साथ ही ऊपर लिखे उपद्रव हों, तो वह असाध्य है।

जो रक्तपित्त रोगी आकाश या अदृश्य पदार्थों को लाल रंग का देखता है, वह मर जाता है। जो रक्तपित्त रोगी निरन्तर रक्त वमन करता है, जिसकी आँखें लाल हो जाती हैं, जिसकी डकारों के साथ खून आता है, वह मृत्यु के मुख में चला जाता है।

रक्तपित्त-चिकित्सा में कुछ स्मरणीय बातें :

यदि रक्तपित्त रोगी अन्न खाता है और बलशाली है, तो आरम्भ में ही उसके वेग से गिरते हुए दूषित रक्त को बन्द करना उचित नहीं। क्योंकि अवरुद्ध दूषित रक्त विसर्प, विद्रधि, प्लीहा, हृदय रोग, पांडु, संग्रहणी, गुल्म, क्षय, मलग्रह, पूतिनस्य, मूर्च्छा, अरुचि, कुष्ठ, अर्श, विवर्णता और भगन्दर आदि अनेक रोग पैदा करता है।

यदि रक्तपित्त रोगी दुर्बल हो और भोजन करता हो और रक्त बहुत गिरता हो, तो उसके दूषित रक्त को बन्द कर देना ही उचित है।

रक्तपित्त में वमन, विरेचन भी कराया जाता है। किन्तु सबल और तरुण रोगी को ही वमन, विरेचन कराने की आयुर्वेद शास्त्र में आज्ञा है—वृद्ध, बालक और निर्बल को नहीं। वृद्ध; बालक और दुर्बल रोगी को रोगशामक दवायें देना ही विधेय है।

लिंग, गुदा, योनि से रक्त गिरने वाले अधोगामी रक्तपित्त में वमन और मुख, नाक, कान आदि ऊपर के मार्गों से रक्त गिरनेवाले ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त रोगी को विरेचन हितकारी है।

जिसे ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त हो तथा बल, मांस और अग्नि क्षीण न हुए हों, उसे पहले लंघन कराना चाहिए किन्तु यदि रोगी दुर्बल है, कुछ खाता-पीता न हो, तो लंघन न कराकर तृप्तिकर और सुपाच्य भोजन देना चाहिए। यदि भोजन देना हो तो घी, शहद और धान की खीलों का मन्थ बनाकर देना चाहिए अथवा खजूर, मुनक्का, मुलेठी और फालसे का काढ़ा चीनी मिला-कर शीतल करके पिलाना चाहिए।

यदि रक्तपित्त के साथ ज्वर भी हो तो रक्तपित्त और ज्वर दोनों का नाश करनेवाली औषधि देनी चाहिए। यदि श्वास, खांसी, स्वर-भेद आदि उपद्रव हों तो राजयक्ष्मा की भाँति उपचार करना चहिए।

रक्तपित्त में पथ्य—अधोमार्ग के रक्तस्राव पर वमन, मुखादि ऊपर के अंगों के रक्तस्राव में विरेचन और दोनों प्रकार के रक्तपित्तों में लंघन कराना चाहिये।

पुराने सांठी या शालि चावल, सांवाँ, जौ, मूँग, मसूर, मोठ खीलों का सत्तू, गाय-बकरी का दूध, घी, भैंस का घी, केले, परवल, अदरख, पुराना पेठा, अडूसा, अनार, खजूर, आँवला, नारियल की गिरी, कसेरू, सिंघाड़े, कैंथ, फालसे, तरबूज, मुनक्का, मिश्री, शहद और ईख—ये सब पदार्थ पथ्य हैं।

शीतल जल, झरने का पानी, जल छिड़कना, पानी में डुब्बी लगाना, सौ बार का धोया घी, मीठे तेल की मालिश, शीतल पदार्थों का उबटन, शीतल हवा, चन्दन का लेप, चाँदनी रात, मनोरंजक वार्तालाप, केले के भीतर के कोमल पत्तों या कमल के पत्तों की शैया, सुखद उपवन, बरफ की फुहार, शीतल रेत, सुन्दर गान—ये सब रक्तपित्त में पथ्य हैं।

अपथ्य—किसी प्रकार का परिश्रम, पद-यात्रा, धूप में घूमना, आग के सामने बैठना, क्रूर कर्म करना, मल-मूत्रादि वेगों को रोकना, हाथी-घोड़े पर चढ़ना, धूम्रपान, मैथुन और क्रोध—ये सब अपथ्य हैं।

कुल्थी, बैंगन, तिल, उर्द, सरसों, दही, पान, मद्य, लहसुन, सेम, विरुद्धाहार, चटपटे, खट्टे, नमकीन, दाहक, गुरुपाक—गरिष्ट, रुक्ष पदार्थों का सेवन, अधिक विरेचक वस्तुयें, कड़ुवा तेल, लाल मिर्च, अधिक नमक, आलू—ये नितान्त वर्जित हैं।

दातून करना, धूप में बैठना, रात्रि-जागरण, जोर से बोलना, गर्म जल से नहाना भी हानिकर है।

अम्लपित्त

दूध-मछली इत्यादि संयोग-विरुद्ध भोजन, दूषित अन्न, खट्टे रस, दाहकारक वस्तुयें तथा पित्त को कुपित करनेवाले खाद्य-पदार्थों के खाने, वर्षाऋतु के अम्लपाकी जल और अन्य कारणों से पहले का प्रकुपित पित्त विदग्ध होकर अम्ल-पित्त रोग उत्पन्न करता है।

अम्लपित्त के लक्षण—कड़ुवी और खट्टी डकारें आना, छाती और गले में जलन, अन्न न पचना, जी मिचलाना, शरीर में भारीपन, अत्यन्त अरुचि और ग्लानि आदि अम्लपित्त के लक्षण हैं।

अम्लपित्त २ प्रकार का होता है—१. ऊर्ध्वंग या ऊर्ध्वंगामी २. अधोग—अधोगामी, नीची गतिवाला।

ऊर्ध्वंग अम्लपित्त में मुँह की राह से वमन होकर दूषित मल निकलते हैं और अधोग अम्लपित्त में गुदा के मार्ग से दूषित मल निकलते हैं। सारांश यह है कि ऊर्ध्वंगामी रक्तपित्त में वमन और अधोग अम्लपित्त में अतिसार—दस्त होते हैं।

ऊर्ध्वंगामी रक्तपित्त के लक्षण—ऊपर के रक्तपित्त में हरे, नीले, पीले, कुछ लाल, अत्यन्त निर्मल, मछली के धोवन के समान अत्यन्त चिकने, लिबलिबे, कफ मिले खारे, तीखे और कड़ुवे रसवाले पित्त के वमन होते हैं।

अधोग रक्तपित्त गुदा-मार्ग से बहता है। इसमें प्यास, दाह, जलन, मूर्च्छा, भ्रम, मोह, उबकाई, वमन, मन्दाग्नि, रोमांच, पसीना आना और शरीर में पीलापन इत्यादि विकार होते हैं।

नीचे के अम्लपित्त वाले को चारों ओर हरा ही हरा मालूम होता है यानी विपरीत ज्ञान होता है।

अम्लपित्त के उपद्रव—भोजन करने के पश्चात् अथवा बिना भोजन किए ही कभी खट्टी, कभी कड़वी वमन होती है; कड़वी और खट्टी डकारें आती हैं, कंठ, हृदय और कोख में जलन होती है, सिर में दर्द होता है, हाथ-पाँव में दाह, संताप होता, शरीर गरम रहता है, भयंकर अरुचि होती है, कफ-पित्त-जनित ज्वर होता है। शरीर में खुजली, चकत्ते और फुंसियाँ होती हैं तथा अन्न का विदग्ध पाक एवं ग्लानि आदि रोग-समूह होते हैं—ये सब अम्लपित्त के उपद्रव हैं।

दोष-भेद से अम्लपित्त ३ प्रकार का होता है—वातसंयुक्त, वात-कफसंयुक्त और कफसंयुक्त। वातज अम्लपित्त में कम्प, प्रलाप, मूर्छा, शरीर में झनझनाहट, ग्लानि, अन्धकार दीखना, विभ्रम, मोह और रोमांच होना—ये लक्षण होते हैं।

कफज अम्लपित्त होने से कफ थूकना, शरीर में भारीपन, जड़ता, अरुचि, शीत, ग्लानि, वमन, मुख और छाती में कफ घिरा रहना, जठराग्नि का नाश, खुजली और अधिक नींद आना—ये लक्षण होते हैं।

वातज-कफज अम्लपित्त में कड़वे और चरपरे रस की डकारें, छाती, कोख और गले में जलन, भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, सिर में दर्द, मुख से पानी गिरना और मुँह का स्वाद मीठा—ये लक्षण होते हैं।

जो अम्लपित्त थोड़े ही दिनों का हो, वह दवा करने से साध्य होता है, बहुत दिनों का अम्लपित्त कष्टसाध्य होता है। अनुचित आहार-विहार करनेवालों का तो अल्पकालीन अम्लपित्त भी कष्टसाध्य होता है।

अम्लपित्त चिकित्सा में स्मरणीय बातें

अम्लपित्त की प्रथमावस्था में चिकित्सा न करने से अम्लपित्त असाध्य हो जाता है। अतः रोगारम्भ होते ही तत्काल चिकित्सा करना चाहिए। अत्यन्त जलन होने या कोष्ठबद्धता रहने या कफाधिक्य होने पर वमन-विरेचन कराना बहुत उपयोगी है। ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त में वमन और अधोग अम्लपित्त में विरेचन लाभकर है। जो मनुष्य नित्य आँवलों के रस के साथ भोजन करता है, उसके अम्लपित्त, वमन, दाह, अरुचि, मोह, प्रमेह और सब प्रकार के वीर्य-विकार नष्ट हो जाते हैं।

अम्लपित्त में पथ्यापथ्य

ऊर्ध्वग अम्लपित्त में वमन और अधोग अम्लपित्त में विरेचन कराना चाहिए। नये और पुराने दोनों ही अम्लपित्तों में वमन कराना आवश्यक है।

अम्लपित्त रोग में पुराने शालि चावल, पुराने जौ, गेहूँ, मूंग हितकर हैं। चीनी, शहद, सत्तू, केले का फूल, करेला, परवल, पुराना पेठा, बथुआ, अनार, आँवले, कसेरू, मुनक्के, नारियल का जल, सेंधानमक, जौ की लपसी, दूध, साबूदाना, बार्ली, धान की खील, पेठे और आंवले का मुरब्बा, पका पपीता,

बेल फल आदि सामान्य रूप से पथ्य हैं। इस रोग में समस्त कड़वे रस, कफ-पित्त-नाशक खाने-पीने के पदार्थ और गरम करके शीतल किया हुआ जल—ये सब पथ्य हैं।

अपथ्य—नया अनाज, पित्त-प्रकोपक खाद्य-पेय पदार्थ, प्रकृति-विरुद्ध पदार्थ, सब प्रकार की दालें – विशेष रूप से उड़द और कुल्थी की दाल, तिल, तेल, खटाई, अधिक नमक, दही, लाल मिर्च, मीठा-खट्टा और चरपरा रस, गरिष्ठ भोजन और तीव्र मद्य – ये सब अनिष्टकारक हैं।

मल—मूत्र और वमन के वेग को रोकना, अधिक भोजन, धूप में घूमना, परिश्रम करना, मैथुन, शोक, क्रोध, चिन्ता, रात्रि-जागरण, दिन में सोना और अधिक दाल-साग खाना ये सब हानिकारक हैं।

हिचकी

जब प्राण और उदानवायु कुपित होकर, बारम्बार ऊपर की ओर जाते हैं, उससे 'हिक-हिक' शब्द के साथ मुख से वायु निकलने के रोग को हिचकी कहते हैं।

कारण—दाहक, गुरु, वायुकारक, रुक्ष और अभिष्यन्दी पदार्थ खाने, शीतल जल पीने, ठंडे भोजन, शीतल जल-स्थान; धूल और धुंआ के मुंह और नाक में जाने, गर्मी और तेज हवा में घूमने, कसरत-कुश्ती, बोझ उठाने, बहुत पैदल चलने, मल-मूत्रादि के वेग रोकने, उपवास करने आदि कारणों से हिचकी; खाँसी और श्वासरोग होते हैं।

वायु-कफ से मिलकर ५ प्रकार की हिचकियाँ पैदा करता है—१. अन्नजा, २. यमला, ३. क्षुद्रा, ४. गंभीरा और ५. महती।

हिचकी होने से पूर्व कंठ और हृदय भारी रहते हैं। वादी से मुँह का स्वाद कसैला रहता है, कोष्ठ में अफारा रहता और पेट गुड़गुड़ करता है।

अन्नजा हिचकी—अनाप-शनाप खाने-पीने से वायु अकस्मात् कुपित होकर ऊपर की ओर जाकर 'अन्नजा' हिचकी उत्पन्न करती है। इस हिचकी की कोई दवा करना आवश्यक नहीं। यह कुछ ही मिनटों में अपने-आप शान्त हो जाती है।

यमला हिचकी—जो हिचकी सिर और गर्दन को कंपाती हुई दो-दो बार निकलती है अथवा रुक-रुककर दो हिचकियाँ आती हैं, हिचकी आने से सिर और गर्दन कांपते हैं। यमला हिचकी कष्टसाध्य होती है। पर कभी-कभी असाध्य भी हो जाती है। इसके साथ प्रदाह, प्यास और मूर्छा का होना घातक है।

क्षुद्रा हिचकी के लक्षण—जो हिचकी कंठ और हृदय के सन्धि-स्थान से पैदा होती है तथा मन्द वेग और देर से निकलती है, उसे क्षुद्रा कहते हैं। यह हिचकी साध्य होती है।

गंभीरा हिचकी – जो हिचकी नाभि के पास से उठती और गंभीर शब्द करती है और जिसके साथ प्यास, श्वास, पसली का दर्द और ज्वर आदि अनेक उपद्रव होते हैं, उसे गंभीरा कहते हैं। यह हिचकी प्रायः किसी रोग के अन्त में उपद्रव-रूप से होती है। बहुधा यह हिचकी जब मनुष्य का अन्तकाल समीप आ

जाता है तब होती है और मनुष्य का प्राणान्त कर देती है। यह असाध्य समझी जाती है।

महती हिचकी—जो हिचकी वस्ति (पेडू), हृदय और मस्तिष्क आदि प्रधान मर्म स्थानों में पीडा करती हुई, शरीर के सब अंगों को कँपाती हुई लगातार चलती रहती है, उसे महती या महा हिक्का कहते हैं। इस हिचकी में पेडू, हृदय और मस्तक आदि मर्मस्थान फटते-से जान पड़ते हैं, और इस हिचकी का तार नहीं टूटता। यह हिचकी भी प्रायः किसी रोग के उपद्रव के रूप में अन्तिमकाल में पैदा होती है और मनुष्य के प्राण ले लेती है।

गंभीरा और महाहिक्का पैदा होने से रोगी की मृत्यु अवश्यम्भावी है। इसके सिवा और हिचकियों में भी रोगी का शरीर फैल जाय, तन जाय, दृष्टि ऊपर की ओर अधिक रहे, आँखें गड्ढे में घुस जायें, देह क्षीण हो जाय और खाँसी चलती हो तो रोगी के जीवित रहने की आशा नहीं।

जिस रोगी के शरीर में वातादि दोष अत्यन्त संचित हों, जिसका भोजन छूट गया हो, जो बहुत दुर्बल हो गया हो, जिसका शरीर अनेक प्रकार की व्याधियों से क्षीण हो चुका है, जो वृद्ध हो, जो अधिक विषयी और क्षीणवीर्य हो, ऐसे मनुष्य के कोई एक हिचकी उत्पन्न होकर प्राण ले सकती है।

हिचकी की भयंकरता—यों तो हैजा, सन्निपात ज्वर आदि अनेक रोग प्राणघातक हैं, पर श्वास और हिचकी रोग जितनी जल्दी मनुष्य के प्राण ले लेते हैं, उतनी जल्दी और रोग

प्राणसंहार नहीं करते। अतः हिचकी और श्वासरोग में लापरवाही करना प्राणघातक है।

हिचकी में स्मरणीय बातें

जो औषधियाँ या अन्नपान कफ और वायुनाशक गरम और वायु को अनुलोमन करने वाले हों—वे सब श्वास और हिचकी में हितकारी हैं।

हिचकी और श्वासरोगी के शरीर में पहले तेल की मालिश करना चाहिए। उसके बाद पसीना निकालने का उपाय करना चाहिए तथा वमन और विरेचन कराना चाहिए। किन्तु यदि हिचकी और श्वास रोगी निर्बल हों, तो वमन-विरेचन न कराकर रोगनाशक औषधियाँ देनी चाहिए।

हिचकी रोग में सेंधानमक मिला हुआ विरेचन अत्यन्त हितकर है। ताजा गाय का घी और मिश्री मिला कर पीना भी हितकारी है।

हिचकी में पथ्य—पसीना निकालना, वमन कराना, नस्य देना, धूम्रपान, विरेचन, दिन में सोना, शीतल जल के छींटे मारना, यकायक डराना-धमकाना, क्रोध दिलाना, प्रसन्न करना प्राणायाम कराना, जली हुई गरम मिट्टी सुंघाना, कुशा की कूंची या किसी फुहारे से जल-धारा छोड़ना, नाभि के ऊपर दबाना; पैरों के ऊपर दो अंगुल, अथवा नाभि से ऊपर दो अंगुल पर; दीपक की जलाई हुई हल्दी की गाँठ से दागना—ये सब हिचकी में पथ्य या हितकर हैं।

पुराने साठी चावल, गेहूँ, जौ, कुलथी, पक्का कैथा, लहसुन, परवल, नरम सूली, काली तुलसी, मद्य, खस का जल, गरम जल; बिजौरा नीबू, शहद, गौ-मूत्र तथा सभी वातनाशक अन्न-पान हितकारक हैं। हिचकी में पेट पर और श्वास में छाती पर तेल मलकर पसीना निकलना और कै करना पथ्य है, परन्तु दुर्बल रोगी को वमन कराना हानिकर है। यदि वायु का उपद्रव अधिक हो तो इमली का भिगोया हुआ पानी पीना, नीबू निचोड़ कर मिश्री का शर्बत पीना, नदी और तालाब में स्नान करना पथ्य है। किन्तु अधिक कफ बढ़ा हुआ हो तो ये सब हानिकार हैं।

हिचकीवाले को गरम घी मिला हुआ पुराने चावलों का गरम-गरम भात बहुत ही उपयोगी है। कई बार ऐसे भात से ही हिचकी नष्ट होते हुए देखी गई है।

अपथ्य—अधोवायु, मलमूत्र, डकार, खाँसी आदि के वेग को रोकना, धूल में रहना, धूप में बैठना या घूमना, परिश्रम करना, अधिक हवा में रहना, गरिष्ठ-गुरुपाक भोजन, तीक्षण-दाहक वस्तुएँ खाना, लोबिया, उड़द आदि पिट्ठी के पदार्थ, तिल की वस्तुयें, जलीय देश के पशु-पक्षियों का मांस, दातून करना, गुदा में वस्ति लगवाना, मछली, सरसों, खटाई, कंद चीजों का साग-तरकारी, तेल में छौंका चौलाई का साग, भारी और शीतल खाने-पीने के पदार्थ—हिचकी रोग में अपथ्य या हानिकारक हैं।

अधिक भोजन, रात्रि-जागरण, चिन्ता, क्रोध, शोक, लाल मिर्च, अमचूर और दही आदि भी अपथ्य हैं।

क्षय (राजयक्ष्मा या तपेदिक)

वायु से फैलने वाले संक्रामक रोगों में क्षय सबसे भयंकर रोग है। क्षय रोग फैलता तो संक्रमण से ही है परन्तु इसकी उत्पत्ति का मूल कारण शारीरिक शक्ति और रस धातुओं का अत्यधिक अपव्यय है। शक्ति से अधिक निरन्तर परिश्रम करते रहने, अधिक मैथुन करने, भोजन में पर्याप्त पौष्टिक तत्व न मिलने से शरीर के कृश हो जाने से क्षय के कीटाणुओं को शरीर में अपनी सृष्टि बढ़ाने का अवसर मिलने, धूल, धुआं, बाल, रेशमयुक्त वायुमण्डल में, अधिक जनाकीर्ण गन्दे दुर्गन्धियुक्त सीलन एवं दूषित हवा में निरन्तर रहने, बार-बार जुकाम होने, जुकम से खाँसी और ज्वर होने तथा खाँसी की उपेक्षा करने से क्षय की उत्पत्ति होती है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में राजयक्ष्मा के समग्र लक्षणों वाले रोग का नाम ट्यूबरकुलोसिस दिया गया है और यह शब्द विकृति विज्ञान तथा जीवाणु-विज्ञान पर आधारित है। इस रोग में ज्वर के बीजों के समान ग्रन्थियों (Tubercles) की उत्पत्ति होती है। इसीलिए इसका नाम 'ट्यूबरकुलोसिस' रखा गया है।

वास्तव में शरीर की रस धातुओं, बल-वीर्य और ओज के अनुचित अपव्यय से शरीर का क्षय होना ही क्षय रोग है। जब ज्वर के साथ निरन्तर खाँसी आती हो, शरीर धीरे-धीरे क्षीण हो रहा हो, वजन घट रहा हो और मुख कान्ति-हीन, विवर्ण

और सूखा पड़ता जा रहा हो तो समझ लेना चाहिए कि क्षय रोग है। ऐसी स्थिति में यथाशीघ्र रोगी का एक्सरे तथा थूकादि की परीक्षा करा लेनी चाहिए और क्षय सिद्ध होने पर उसको किसी सेनिटोरियम में भरती करा देना चाहिए। सेनिटोरियम भरती कराना शक्य न हो तो घर में ही रोगी को पृथक् रखकर समुचित चिकित्सा की व्यवस्था करनी चाहिए।

घर में रोगी को पूर्ण स्वच्छ, खुले हवादार, थोड़ी धूप आनेवाले सुप्रकाशित ठंढे स्थान में इस प्रकार पृथक् रखना चाहिए कि घर के बच्चे या अन्य लोग रोगी के सम्पर्क में न रहें। क्षय रोगी चाहे जहाँ न थूककर, एक नियत स्थान पर रक्खे ढक्कनदार पात्र में ही थूके और उस थूक में तुरन्त ही चूना या राख डाल दिया जाय। रोगी के उपयोग में आनेवाले बर्तन और वस्त्रादि बिना भलीभाँति स्वच्छ किए अन्य लोगों को उपयोग में न लाना चाहिए। क्षय-रोगी के कमरे को सदैव भलीभाँति स्वच्छ रखना आवश्यक है। उसके कमरे का फर्श यदि पक्का है तो कीटाणुनाशक घोल से धोना या घोल से भीगे कपड़े से साफ करना चाहिए। कमरे का फर्श कच्चा हो तो उसको गोमूत्र मिले गोबर से नित्य लीपना चाहिए। गूगुल या राल की धूप जलाना चाहिए। रोगी के ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों को नित्य कुछ देर धूप में सुखाना चाहिए। क्षय रोगी को पूर्ण विश्राम, बकरी या गौ का दूध, पाचन-शक्ति के अनुकूल हल्का सुपाच्य और पौष्टिक भोजन देना चाहिए।

७. वासाकन्द

खाँसी, श्वास, रक्तपित्त आदि में वासा के फूलों से द्विगुण मिश्री या शक्कर मिलाकर किसी कांच, चीनी या घी के चिकने पात्र में रखकर निरन्तर १५ दिन तक धूप में रक्खें। फिर उठाकर सुरक्षित रख दें। उस वासाकंद को ६ माशे से १ तोले तक की मात्रा में दिन में २-३ बार सेवन करने से सब प्रकार की खाँसी, श्वास, रक्तपित्त, पीनस और फुफ्फुस की विकृति से उत्पन्न राजयक्ष्मा में शीघ्र ही विशेष लाभ होता है।

८. अडूसे का माजूब

जुकाम, खाँसी, श्वास, क्षय आदि में वासा के हरे पत्ते पीसकर गोला बनाकर उस पर एरंड के हरे पत्ते लपेटकर, उस पर उर्द का आटा लेप कर, गर्म राख में दबा दें। जब आटा पक जाय तब आटा और एरंडपत्र हटाकर, अडूसे के गोले को किसी मोटे मजबूत कपड़े में रखकर रस निकाल लें। जितना रस हो उसकी आधी शक्कर, दशमांश पीपल का चूर्ण और दशमांश गाय का घी डालकर पकावें। जब चाशनी गाढ़ी हो जाय, तब उतारकर, शक्कर के वजन के बराबर शुद्ध शहद मिलाकर अमृतवान में भरकर रख लें। इस माजून की ४-४ माशे की मात्रा प्रातः-सायं लेने से जुकाम, खाँसी, दमा, छाती का दर्द और क्षय आदि रोगों में बहुत लाभ होता है।

९. वासा घनसत्व

खाँसी, श्वास, रक्तपित्त में वासा के एक सेर पंचांग को कूटकर १६ सेर जल में पकावें। चौथाई शेष रहने पर छानकर,

बने हुए क्वाथ को पुनः मंदाग्नि पर पकायें। जब गोली बनने योग्य हो जाय, तब ४ रत्ती से एक माशे तक की गोलियाँ बना लें। दिन में ३ या ४ गोलियाँ शहद के साथ सेवन करने से खाँसी, श्वास और रक्तपित्त में बहुत लाभ होता है।

१०. वासाक्षार

खाँसी, दमा, रक्तपित्त आदि में वासा के पंचांग को छाया में सुखाकर, किसी निर्वात स्थान में जलाकर राख कर लें। फिर इस राख को किसी चीनी मिट्टी या मिट्टी के पात्र में चौगुने जल में भिगो दें। बीच-बीच में किसी डंडे से चलाते रहें। तीसरे दिन ऊपर का पानी नितार कर, एक मोटे कपड़े से छान लें, जिससे राख का अंश न आ सके। शेष बची हुई राख में दुगुना जल डाल कर घोल दें और जल को निथार कर जीभ पर रखकर थोड़ा चखकर देख लें। यदि इसमें क्षार मालूम पड़े तो इस जल को भी पहलेवाले जल में मिला दें। इस प्रकार ३ या ४ बार चखकर देख लें। जब तक क्षार मालूम देता रहे, तब तक इसके जल को पहले वाले जल में मिलाते जायें। किन्तु प्रति बार आधे-आधे परिमाण में जल मिलायें। फिर सब एकत्र किए हुए जल को स्वच्छ कड़ाही में मन्दाग्नि से पकावें। पानी जल जाने पर श्वेत क्षार जो कड़ाही में रहे, उसे खुरच कर निकाल लें।

यह क्षार एक से ३ रत्ती तक की मात्रा में शहद या अदरख के रस के साथ देने से खाँसी, दमा और रक्तपित्त में अमृत के

समान लाभ होता है। इसे पान के बीड़े के साथ लेने से सब प्रकार की खाँसी और श्वास को लाभ पहुँचता है।

११. वासा घनक्षार

वासा के शुष्क पंचांग को जलाते समय राख को लकड़ी से दबाते जायें। जब बिल्कुल जलकर काली हो जाय, तब राख से अठगुना जल मिला, किसी चीनी या मिट्टी के पात्र में घोलकर ३ दिन तक पड़ा रहने दें और बीच-बीच में इसे अडूसे की लकड़ी से चलाते रहें। फिर ऊपर के सब पानी को धीरे-धीरे नितारकर कपड़े से छानकर कड़ाही में औटायें। जब गाढ़ा हो जाय, तब किसी पात्र में उसे जमा दें। बस क्षार तैयार हो गया।

यह क्षार १ से ४ रत्ती तक की मात्रा में अदरख के रस या शहद के साथ प्रातः-सायं देने से हर प्रकार की भयंकर खाँसी का वेग तत्काल रुक जाता है। श्वास रोग में भी बहुत गुणकारी है। कफ से कंठ फँसा हुआ हो, बोलना कठिन हो, किसी दवा से लाभ न हो रहा हो तो यह क्षार तत्काल चमत्कारिक प्रभाव दिखलाता है।

१२. वासा पर्पटी रसायन

कफनाशक और शक्तिवर्धक वासा का पंचांग (जड़, तना, पेड़, पत्ती, फूल, फल सहित) लाकर, उसे काट कर छोटे-छोटे टुकड़े कर लें और उसे एक कड़ाही में डालकर, उसमें इतना जल डालें कि जल वासा से ४ अंगुल ऊपर तक रहे अथवा वासा

पंचांग से दुगुना जल डालें। ऋतुकाल के अनुसार जल की मात्रा थोड़ी-बहुत घटाई-बढ़ाई जा सकती है। इस कड़ाही को किसी ऐसे खुले स्थान पर रख दें, जहाँ दिन में सूर्य की धूप और रात को ओस गिरती रहे। इसे दिन में एक-दो बार अडूसा की लकड़ी से हिला दिया करें। २१ दिन बाद इस कड़ाही को ज्यों की त्यों चूल्हे पर चढ़ा दें और चूल्हे में अडूसा की लकड़ी या बबूल की लकड़ी जलाकर एक घंटे तक मन्द आँच और फिर मध्य आँच करें। आग जलाते समय कड़ाही में पड़े वासा को हिलावें-चलावें नहीं। जब कड़ाही का समस्त जल सूख जाय, तो कड़ाही को किसी साफ फर्श या तख्ते पर उलट दें। कड़ाही का सब वासा फर्श पर गिर जायगा और कड़ाही के पेंदे में काले रँग की पपड़ी जमी हुई मिलेगी। इस पपड़ी को किसी साफ खुरपे से खुरच कर, खरल में डालकर अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण कर लें और शीशे में सुरक्षित रख लें।

आवश्यकतानुसार इसको आधी रत्ती से एक रत्ती तक मक्खन या दही की मलाई में रखकर रोगी को प्रातःकाल खाली पेट खिलावें और औषधि देने के पश्चात् उसी समय बिना नमक या गुड़-शक्कर मिलाए हुए मट्ठा पिलावें। पथ्य में तक्र का सेवन अधिक कराना चाहिए। अपथ्य-स्वरूप कड़ुवा तेल, मिर्चा, खटाई इत्यादि का परहेज़ रक्खें।

यह पपंटी कफ निकालने पर आक्षेप निवारक है और रक्त के रक्तकण को बढ़ानेवाली है। यह क्षय, श्वास, पुरानी खांसी और समस्त हृदयगत रोगों की महौषधि है। तिक्त होने से क्षुधा-

वर्धक है। २१ दिन लौह-पात्र में रहने के कारण इसमें लौह का सूक्ष्म अंश आ जाता है। लौह भी रक्त और शक्तिवर्धक है। यह वासा और लौह का अद्भुत गुणकारी योग है। इस वासा पर्पटी में वासा कफ-निस्सारक होने से श्वासनलिका और फुफ्फुस में जमे कफ को निकालता है। जिससे श्वासवाही स्रोतों में श्वास का आवागमन सुगम हो जाता है। इस प्रकार वासापर्पटी के प्रयोग से श्वासवाही स्रोतों को अवरुद्ध करने वाला कफ बाहर निकल जाता है और लौह के कारण उसका स्राव रुककर रोगी की व्याधि नष्ट होती है। इसके अतिरिक्त इसमें लौहांश होने से रोग-निवृत्ति के साथ-साथ रोगी की शक्ति बढ़ती है, नवीन रक्त उत्पन्न होता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती और क्षुधा-वृद्धि होती है। साथ में तक्र का सेवन सोने में सुहागे का काम करता है। यह त्रिदोषनाशक है। आयुर्वेद में कहा गया है—'न तक्र दग्धः प्रभवन्ति रोगः।'

२१ दिन में सूर्य की किरणों और रात में ओस तथा चन्द्र-किरणें पड़ने के कारण अनेक प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रियायें होने के कारण वासा और लौह के सूक्ष्म तत्व इस वासा-पर्पटी में आ जाते हैं। इस प्रकार यह वासा-पर्पटी जहाँ पुराने श्वास-कास कफज-रोगों को दूर करती है, वहीं रोगी की दुर्बलता दूर कर, शक्ति का संचार करती है।

१३. वासा टिंचर

वासा के पत्तों को साफ पत्थर के खरल में घोटकर निकाले हुए स्वरस अथवा पुटपाक विधि से निकाले हुए रस को लेकर;

इससे आधा भाग रेक्टीफाइड स्प्रिट मिला एक डाटदार बोतल में भर कर ७ दिन रक्खे रहें। फिर छानकर दूसरी बोतल में भर लें। यह टिंचर १० से ६० बूँद की मात्रा में देने से कास, श्वास आदि में अत्यन्त लाभ होता है।

१४. वासासव

अडूसा पत्र १० सेर १०२४ तोला जल में पकावें। २५६ तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर उसमें २०० तोला गुड़, १६ तोला धाय के फूलों का चूर्ण तथा तण, इलायची, तमाल पत्र, नागकेशर, कंकोल, सोंठ, काली मिर्च, पीपल; नागरमोथा—ये सब २-२ तोला लेकर चूर्ण कर मिट्टी के चिकने पात्र में भरकर उसका मुख बन्द कर, २१ दिन तक रखा रहने दें। फिर छानकर बोतलों में भरकर, १५ दिन तक बोतलों में रखने के बाद फिर छानकर रख लें और उपयोग करें।

आधा तोला से एक तोला तक यह आसव जल के साथ; भोजन के पश्चात् दोनों समय लेने ले जलोदर, पांडु, सूजन के दर्द और खाँसी में बहुत लाभ होता है।

१५. वासारिष्ट

(१) १० सेर वासा-पंचांग कूटकर एक मन ११ सेर १६ तोला पानी में पकावें। १२॥ सेर ४ तोला पानी शेष रहने पर छान लें। फिर उसमें ५ सेर गुड़, धाय के फूल ३२ तोला, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात, नागकेशर, कंकोल, सोंठ, मिर्च, पीपल और सुगन्ध-बाला का मोटा चूर्ण प्रत्येक ४-४ तोला—सबको

होता है। यदि स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य की दुर्बलता से सन्तानोत्पत्ति में बाधा हो तो दोनों को इसका सेवन करना चाहिये।

(२) अड़ूसा के पत्तों का रस १०० तोला लेकर रेक्टीफाइड स्प्रिट आफ वाइन (Rectified [illegible]rit of wine) १०० तोला में मिला चीनी के अमृतवान में डाल उसमें मुलहठी सत २ तोला, कपूर १ तोला, अफीम १ [illegible], बहेड़े का चूर्ण २ तोला, लौंग २ तोला, इलायची २ तोला, काली मिर्च १ तोला तालीसपत्र पत्र २ तोला, काकड़ासिंगी [illegible] तोला, धतूरे के शुद्ध बीज १ तोला, कूठ २ तोला और श[illegible] ४० तोला डालकर उस पात्र का मुख बन्द कर एक महीने [illegible] पड़ा रहने दें। फिर छान कर बोतलों में भर लें।

इस अरिष्ट को ३ माशे से [illegible] माशे तक २ तोला जल के साथ दिन में ३ बार पिलाने [illegible] खाँसी और श्वास में अद्भुत लाभ होता है। औषधि पी[illegible] श्वास का वेग दूर हो जाता है। यह अरिष्ट यदि रे[illegible]इड स्प्रिट के स्थान पर मृत संजीवनी सुरा से बनाया [illegible] तो और भी महान गुणकारी हो जाता है।

१६. अ[illegible]रोगनाशक एलाद्यरिष्ट

छोटी इलायची। १ तोला, अड़ूसा की जड़ की छाल ८० तोला, मजीठ, कु[illegible] छाल, दन्ती मूल, गिलोय, हल्दी, दारु हल्दी, रास्ना, ख[illegible]ठी, शिरीष की छाल, खदिरकाष्ठ, अर्जुन की छाल, चिर[illegible]म की अंतर छाल, चित्रकमूल छाल, कूठ,

सौंफ प्रत्येक ४-४० तोला लेकर सबको एकत्र मिलाकर जौकुट चूर्ण कर लें। फिर इस चूर्ण को २०५ सेर जल में डालकर पकावें। जब अष्टमांश (२५ सेर १० छटाँक) शेष रहे तो उतारकर छान लें। तत्पश्चात् इस क्वाथ में धाय के फूल ६४ तोला, शहद १५ सेर, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, जटामासी, नागरमोथा, कचरीला, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा प्रत्येक ४-४ तोला ले जौकुट चूर्ण कर लें। इन सबको एक मिट्टी के पात्र में भरकर, मजबूती से सन्धि बन्द कर, एक मास तक संधान करें। एक मास पश्चात् निकालकर छान लें और सुरक्षित रख लें। १।। तोला से २।। तोला समान भाग जल मिलाकर भोजन के बाद २ बार इस अरिष्ट का सेवन करने से विसर्प, मसूरिका, रोमान्तिका, शीतपित्त, बिस्फोट (फोड़े), विषम ज्वर, नाड़ीव्रण (नासूर), दुष्ट व्रण, दारुण कास, श्वास, भगन्दर, उपदंश और प्रमेह पीड़िका आदि रोग समूल नष्ट होते हैं।

यह अरिष्ट शीत वीर्य, मूत्रल, [illegible]र, पाचन, रक्त-प्रसादन, विषघ्न और बल्य है। इसके प्रयोग से मूत्रोत्पत्ति कुछ अधिक होती है, जिससे रक्त में संचित विष मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है और यकृत से पित्तस्राव की वृद्धि होकर अंत:स्थित आमविष और कीटाणुओं को नष्ट करता है।

विसर्प, मसूरिका, शीतपित्त, प्रमेह [illegible] (कारबंकल) आदि अनेक व्याधियों की उत्पत्ति रक्त में [illegible]गों या विषवृद्धि

होने पर होती है। यह अरिष्ट इन रोगों की उत्पत्ति और वृद्धि करने वाले मूल विष को ही बाहर निकाल देता है और नवीन उत्पत्ति को बन्द करता है। परिणामस्वरूप रोग समूल नष्ट हो जाता है।

१७. वासा खण्डपाक

हृदय रोग, क्षय, कास, श्वास, रक्तपित्त आदि नाशक वासा के ५ सेर स्वरस या क्वाथ में २॥ सेर खाँड और १३ छटाँक हर्र का चूर्ण मिलाकर मन्दाग्नि से पकावें। जब लोहवत् हो जाय तो शहद ८ तोले, वंशलोचन ४ तोले, पीपल, दालचीनी १-१ तोला तथा तालीसपत्र, छोटी इलायची, और नागकेशर ६-६ माशे—इनका कपड़छन चूर्ण मिलाकर रख लें। ३ माशे से १ तोले की मात्रा में इस खण्डपाक का सेवन करने से हृदय रोग, क्षय, कास, श्वास, प्रतिश्याय और रक्तपित्त में अतिशय लाभ होता है।

१८. वासा कूष्माण्ड खण्ड

जीर्ण कास, श्वास, और रक्तपित्त आदि में अड़ूसे की जड़ की छाल २५६ तोले लेकर जौकुट कर लें और ६४ सेर जल में पकायें। जब १६ सेर शेष रह जाय तो उतारकर छान लें।

उत्तम पेठा लाकर छील-काट लें। पेठे के बीज और बीजों का स्थान निकालकर फेंक दें। ५ सेर पेठे के टुकड़ों को १० सेर जल डालकर पकावें। जब आधा पानी रह जाय तो उतार लें और पेठे के टुकड़ों को रेजी के कपड़े में पानी निचोड़ लें। इन निचोड़े हुए टुकड़ों को कुछ देर धूप में रखकर सुखा लें।

२॥ सेर पे के टुकड़े लेकर ६४ तोले घी में भूनकर लाल कर लें। फिर ऊपर का १६ सेर काढ़ा, घी में भुने हुए पेठे के टुकड़े २॥ सेर, पेठे का स्वास २५६ तोले और चीनी ५ सेर— इन सबको कड़ाहे में डालकर मन्दाग्नि से पकावें। पकते-पकते जब अवलेह के ान गाढ़ा हो जाय, तो नीचे उतार लें और कुछ गर्म रहते ही उसमें वंशलोचन, आँवला, नागरमोथा, नारंगी, तेजपात, छोटी इल ची और दालचीनी प्रत्येक १-१ तोला, भूमि छरीला, सो ध ा और काली मिर्च प्रत्येक ४-४ तोले और छोटी पीपल १ तो —इन सबका चूर्ण मिला दें। शीतल हो जाने पर ३२ तो हद मिलायें। इस अवलेह का नाम वासा कुष्माण्ड खण्ड है। ी मात्रा ६ माशे से २ तोले तक है। इसके सेवन करने से ी से पुरानी भयंकर खाँसी श्वास, क्षय, हिचकी, रक्तपित्त, क, हृदय रोग, अम्लपित्त और पीनस रोग आराम हो जाते। सहस्रानुभूत शास्त्रीय योग है।

१९. वासा हरीतकी-लेह

खाँसी, श्वास, क्षय, रक्तपित्त में व ी जड़ की छाल या ताजे पत्ते ४०० तोले जल से ध कर कूटकर अठगुने जल में कलईदार कड़ाही में डालक पक चतुर्थांश जल शेष रहने पर ठंढा होने पर कपड़े से छान उसमें गुठली निकाली हुई बड़ी हरड़ों का चूर्ण २५६ तोले चीनी ४०० तोला डालकर पकावें। पकाते समय लकड़ी की से चलाते रहें। जब लेह जैसा हो जाय तो नीचे उतार लें। होनें पर

उसमें ३२ तोला शहद और वंशलोचन १६ तोला, छोटी पीपल २ तोला, दालचीनी ४ तोला, छोटी इलाइची ४ तोला, तेजपात ४ तोला, नागकेशर ४ तोला और काकड़ासिंगी ४ तोला इन सबका कपड़छन चूर्ण और घी एक सेर मिलाकर काँच या चीनी के पात्र में भर लें।

मात्रा और अनुपान—६ माशे से एक तोला तक यह अवलेह चाटकर ऊपर से गाय का गरम दूध पिलावें।

इस अवलेह के सेवन से खाँसी, श्वास, क्षय, रक्तपित्त और प्रतिश्याय में लाभ होता है। नवीन और पुराने कफ रोग अथवा खाँसी और श्वासनलिका की सूजन में इस अवलेह का सेवन बहुत लाभकारी है। इससे कफ पतला होकर शीघ्र बाहर निकल जाता है, जिससे खाँसी और दमा में छुटकारा मिलता है। कफ रोगों में हृदय में बहुत शिथिलता आ जाती है, जो इस अवलेह के सेवन से दूर हो जाती है। इस अवलेह के सेवन से रक्तस्राव, रक्त-मिश्रित दस्त, बवासीर, क्षय, रक्तप्रदर, रक्तपित्त आदि रोग अच्छे हो जाते हैं। बार-बार होनेवाले जुकाम या पुराने जुकाम या खूनी बवासीर के रोगियों को प्रायः कब्ज की शिकायत रहती है। वासा हरीतकी अवलेह के सेवन से कब्ज भी दूर हो जाता है।

२०. वासा घृत

(१) कास, श्वास, क्षय, रक्तपित्त आदि में वासा की जड़, पत्ते शाखासहित ६। सेर कूटकर ३२ सेर पानी में पकावें। ४ सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर इसमें ४ सेर घी और आध सेर अडूसे के फूलों का कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर

पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। यह घृत एक तोले की मात्रा में लेकर ३ माशे शहद मिलाकर सेवन करने से कास, श्वास, प्रतिश्याय, तृतीयक और चतुर्थिक ज्वर, रक्तपित्त, क्षय और विषविकार नष्ट होते हैं। यदि यह शहद और खांड़ मिलाकर लिया जाय तो पित्तज खाँसी और समस्त पित्तज विकार नष्ट हो जाते हैं।

(२) एक सेर अडूसे का पंचांग लेकर १६ सेर जल में औटाओ। चतुर्थांश जल शेष रहने पर मलकर छान लो फिर एक सेर गाय का घी और इस काढ़े को मिलाकर कलईदार कढ़ाही में औटाओ। पकते समय १ पाव अडूसे के फूल और एक पाव अडूसे की जड़ का कल्क मिला दो। घृत मात्र शेष रहने पर उतारकर छान लो। इस घृत की मात्रा १ से ३ तोला तक है। प्रति मात्रा में थोड़ा-सा शहद मिलाकर प्रातः-सायं पीने से श्वास-रोग का समूल विनाश हो जाता है। यह योग सुश्रुत का है और बहुपरीक्षित है।

(३) वासा घृत—श्वास, कास, उरःक्षत आदि पर—२ सेर वासा की जड़ साफ कर छोटे-छोटे टुकड़े कर लो फिर चीनी-मिट्टी के बर्तन मे रखकर ऊपर से एक पाव बकरी का दूध डाल कर धूप में रख दो। इस प्रकार ४० दिन तक नित्य दूध डालते रहो, दिन में दो-एक बार अडूसा की लकड़ी से इसे चला दिया करो। अगले दिन दूध तभी डालो जब पहले दिन का दूध सुख जाय। तदनन्तर एक हाड़ी के नीचे छोटा-सा छेद कर उसमें एक कपड़े की बत्ती डाल दो। फिर हाड़ी का मुँह बन्द करके कप-

रौटी कर दो। फिर एक गड्ढा जिसमें हाड़ी के अगल-बगल लगभग १ वित्ता स्थान छूटा रहे, खोदकर उस गढ़े के बीच में एक और छोटा-सा गड्ढा करके उसमें काँसे की कटोरी रख दो फिर हाड़ी को गढ़े में रखकर गढ़े में चारों ओर वन्योपल (जंगली कंडे) भर कर आग लगा दो। यह आग धीरे-धीरे जलनी चाहिए। स्वाँग शीतल होने पर राख और हाड़ी को अलग करके सावधानी से कटोरी निकालकर किसी चौड़े मुँह की शीशी में घी को सुरक्षित रख लो।

इस घी की एक-एक बूंद प्रातः-सायं बंगला पान में देने से सब प्रकार के श्वास, कास, उरःक्षत, रक्तपित्त, हिचकी और कुकुरखाँसी में निश्चित रूप से शीघ्र लाभ होता है। यह घी तुरन्त ही अपना प्रभाव दिखाता है। दमा, श्वास की खाँसी की अनुभूत औषधि है। राजयक्ष्मा में भी लाभदायक है। छोटे बच्चों को यह घी आधे बंगला पान के स्वरस या माता के दूध में दें।

२१. वृहद् वासाघृत

रक्तपित्त, गुल्म, हलीमक आदि में अडूसे की जड़ पत्तों और शाखों का स्वरस १६ सेर यदि स्वरस न निकाल सकें तो चौगुने या आठगुने जल में अडूसे का पंचांग डालकर क्वाथ बना लें। गाय का घी और गाय का दूध ४-४ सेर लेकर रखो।

अडूसे के पत्ते, चिरायता, कुड़े की छाल, नागरमोथा, मुलेठी, चन्दन, खस, महुवा, अनन्तमूल, सारिवा, कमल, पदमाख, त्रायमाण, कुमुदनी; मूर्वा और मोतिये के पत्ते ये सब १-१ छटाँक लेकर सिल पर पानी के साथ पीसकर लुगदी बना लो।

तत्पश्चात् घी, स्वरस या काढ़ा, दूध और लुगदी को एक में मिलांकर मंदाग्नि पर पकाओ। जब घृत मात्र शेष रह जाय उतारकर छान लो।

इस घी की मात्रा ६ मासे से लेकर दो तोले तक है। इसमें घी से चौथाई मात्रा शहद और मिश्री मिलाकर पीने से भयंकर रक्तपित्त, पैत्तिक गुल्म, वात गुल्म, स्वर-भेद, हलीमक और रक्तपित्त से होनेवाले समस्त विकार शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

२२. वासा चन्दनाद्य तैल

कास ज्वर, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा आदि में सफेद चन्दन, रेणुका, जुन्दवेदस्तर (खट्टासी), असगंध प्रसारणी, दालचीनी; तेजपात, बड़ी इलायची, पीपलामूल, नागकेशर, मेदा, सोंठ, मिर्च, पीपल, रास्ना, मुलेठी, छरीला, कपूर, कूठ, देवदारु, फूल प्रिपंगु और बहेड़ा प्रत्येक ४-४ तोले लेकर सबको एकत्र कूट-पीस लें। फिर पाँच सेर वासा की मूल या पंचांग को कूटकर २५॥ सेर पानी में पकावें। चौथाई जल शेष रहने पर छान लें। बाद में सफेद चन्दन, गिलोय, भारंगी, दशमूल और छोटी कटेरी प्रत्येक १-१ सेर लेकर सबको एकत्र कूटकर सबको २५॥ सेर जल में पकावें जब चौथाई जल शेष रहे तो छान लें फिर-तिल तैल ६ सेर ६ छटाँक, २ तोला लाख का रस और दही का पानी प्रत्येक तेल के बराबर लेकर सबको एकत्र मिला तैलपाक विधि से तैल तैयार कर लें।

यह तैल कास ज्वर, रक्तपित्त, पाण्डु, कामला, हलीमक; क्षतक्षय, राजयक्ष्मा और श्वास में उपयोगी है। इस तैल की

मालिश से बल वर्ण की वृद्धि होती है। इस तैल का उपयोग राजयक्ष्मा की खाँसी, पुरानी खाँसी तथा श्वास रोगजन्य पुरानी दुर्बलता में किया जाता है। यह तैल सौम्य होने के कारण कफ को ढीला करता है तथा श्वासमार्ग अथवा छाती में जमे बलगम व पुराने कफ को पिघलाकर बाहर निकालता है साथ ही शरीर में रक्त की वृद्धि कर देह को पुष्ट और कान्तिवान बना देता है। रक्तपित्त में पित्त की विकृति के कारण रक्त अधिक गिरता हो, तीव्र खाँसी हो, शरीर में दाह हो, तृषाधिक्य हो, ज्वर बना रहता हो, रक्ताल्पता के कारण शरीर का रंग पीला हो गया हो तो इन अवस्थाओं में इस तैल की मालिश में अच्छा लाभ होता है। क्योंकि यह तैल पित्तविकारशामक तथा रक्तशोधक है। इसीलिए रक्तपित्त रोग में वासा द्वारा अनेक औषधियाँ बनाकर देने का शास्त्र में विधान है।

२३. खंडकाद्य लौह

रक्तपित्त, क्षय, पार्श्वशूल, वातरक्तादि में अड़ूसे की जड़ की छाल, गिलोय, शतावर, गोरखमुण्डी, खिरैंटा, मूसली, खैरकाष्ठ, त्रिफला, भारंगी, पोहकरमूल—प्रत्येक दवा २०-२० तोला लेकर जौकुट कर ६४ सेर जल में डालकर पकाओ। जब आठ सेर जल रह जाय उतारकर छान लो। फिर इस काढ़े में मैनसिल द्वारा बनाई गई कान्तलौह भस्म ४८ तोले, चीनी ६४ तोले मिलाकर ताँबे के पात्र में फिर पकाओ। जब गाढ़ा हो जाय तो नीचे उतार लो और शीतल होने पर ३२ तोले शहद मिला दो। तत्पश्चात् बंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, काकड़ासिंगी, छोटी पीपल,

बायबिडंग, सोंठ, सफेद जीरा, त्रिफला, धनिया, तेजपात, काला जीरा, काली मिर्च और नागकेशर ४-४ तोले—इनको कूट-पीस छान लो और उपरोक्त शहद मिले अवलेह में मिला दो और हाथ से खूब मथो। एक में मिल जाने पर घी के चिकने पात्र या काँच अथवा चीनी मिट्टी के स्वच्छ पात्र में रख दो। इसका नाम 'खंडकाद्य अवलेह' है। इसकी मात्रा १॥ से ३ माशे तक है। इसको चाटकर ऊपर से गाय का दूध पीना चाहिए। इसके सेवन-काल में दूध, घी, मांस का शोरबा, स्निग्ध और पौष्टिक भोजन करना विधेय है।

इस लौह का सेवन करने से रक्तपित्त, क्षय, खाँसी, पसली का दर्द, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन ग्लानि, सूजन, पाण्डु रोग, कोढ़, प्लीहा, उदर रोग, अफारा और अम्लपित्त ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह अवलेह नेत्रों के लिए परम हितकारी, पुष्टिकारक, कामशक्तिवर्धक, आरोग्यदायक और शरीर को स्फूर्ति प्रदान करनेवाला है।

इस अवलेह के सेवनकाल में नारियल का जल, बथुआ, मूली, परवल, बैंगन, पके आम, खजूर, मीठे अनार और ऐसे पदार्थ जिनके नाम का पहला अक्षर 'क' से हो उन सबको त्याग दें।

२४. वासा स्वर्ण भस्म

स्वर्ण पत्र १ तोला को खूब तपा-तपाकर १०० बार वासा की जड़ के रस या क्वाथ से बुझाओ। फिर उसे सत्यानाशी के कल्क में रखकर सराव-सम्पुटकर, जंगली कण्डों की आग में रखकर भस्म बना लो।

५

यह भस्म स्निग्ध, शीतवीर्य, मधुर और रसायन गुणवाली है। उचित अनुपान के साथ इस भस्म के सेवन से पुराना श्वास, कास, दाह, पित्त रोग, पित्तज उन्माद, प्रदर, नपुंसकता, जीर्ण ज्वर, मन्दाग्नि आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं। इसकी मात्रा चौथाई से एक रत्ती तक है।

२५. ताम्र भस्म

शुद्ध ताम्रपत्र को खूब तपा-तपाकर १०० वार वासापत्र-रस में बुझाने के पश्चात् उसे राई के हरे पत्तों की लुगदी में रखकर सराव सम्पुट कर एक मन–आरने (जंगली) कंडों की आग में फूँक दें। इस प्रकार ३ बार फूँकने से भस्म तैयार होगी।

यह भस्म उदरविकार–प्लीहा, यकृत विकार, अजीर्ण, अफारा, हिचकी, अतिसार, संग्रहणी, गुल्म, कुष्ठ, कृमि रोग, विषम ज्वर, अम्ल पित्त, हैजा, प्लेग आदि अनेक रोगों में उपयोगी है। इसकी मात्रा आधी से १ रत्ती तक है।

२६. गोदन्ती हरताल भस्म

गोदन्ती हरताल को अडूसा के रस के साथ खरलकर गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार ७ बार वासा स्वरस से खरलकर गजपुट देने से जो भस्म तैयार होती है, वह जीर्ण ज्वर के लिए विशेष लाभदायक होती है। एक रत्ती की मात्रा में इसे शर्बत अंजुवार के साथ देने से रक्तपित्त दूर होता है।

इसके अतिरिक्त उचित अनुपान के साथ इस भस्म के सेवन से पित्तज्वर, आमज्वर, मलेरिया ज्वर, प्रतिश्याय, सूखी खाँसी,

रक्तप्रदर, कास, श्वास, शिरशूल आदि अनेक व्याधियों में लाभ होता है। सिर दर्द में १ माशा गोदन्ती भस्म, १ माशा मिश्री और १ तोला शुद्ध घृत मिलाकर प्रातः-सायं देने से लाभ होता है। इसी प्रकार आधा शीशी, सूर्यावर्त अर्धावभेदक में सूर्योदय के प्रथम से प्रारम्भ कर ४-४ घण्टे के अन्तर से देने से अवश्य लाभ होता है।

स्त्रियों के प्रदर और बालकों के सूखा रोग में गोदन्ती के समान प्रवालपिष्ठी और मधु मिलाकर देना गुणकारी है। इस भस्म की मात्रा २ से ६ रत्ती तक है।

२७. जुकाम में

(१) २ तो० अड़ुसा के पत्तों को पावभर पानी में पकावें। जब छटाँक भर पानी रह जाय मलकर छान लें। शीतल होने पर ४ माशे मिश्री और २ माशे शहद मिलाकर पीने से साधारणतया जुकाम जल्दी ही ठीक हो जाता है।

(२) अड़ूसे के पत्ते, मुनक्का, मुलेठी, लिसोढ़ा, बनफशा, गुलबनफसा प्रत्येक १-१ तोला, काली मिर्च और मिश्री ६-६ माशे मिला जौकुट चूर्ण बनाकर रखें। इस चूर्ण से एक तोला चूर्ण लेकर १६ तोले जल में पकावें। ४ तोला शेष रहने पर उतारकर महीन कपड़े से छानकर ३ माशे शहद और ६ माशे घी मिलाकर सेवन करें। दिन में २-३ बार और रात को इस क्वाथ को पीकर सो जावें। नया या पुराना जुकाम रुक गया हो, जुकाम के कारण ज्वर हो, सिर में दर्द रहता हो, आलस्य और सुस्ती रहती

हो तो इस क्वाथ के २-३ दिन नियमित रूप से सेवन करने से सारे कष्ट दूर हो जाते हैं।

२८. खाँसी में

(१) अडूसे की जड़ की छाल १।। तोला, और गिलोय १ तोला–दोनों को जौकुट कर २० तोला जल में पकावें। ७।। तोला जल शेष रहने पर छान लें और इसकी ३ मात्रायें बना दिन में ४ बार प्रतिवार ४ माशे शहद मिलाकर सेवन कराने से कफजन्य तर खाँसी दूर होती है।

(२) अडूसा के फूलों के चूर्ण के साथ चौथाई भाग जौहर नौसादर मिलाकर २-२ रत्ती की मात्रायें बताशा में रखकर खिलाने से खाँसी नष्ट हो जाती है।

(३) अडूसा की जड़ की छाल, मुलेठी, पीपल १-१ तोला, काली मिर्च ३ माशे सबको चूर्णकर बबूल की छाल के रस में घोटकर मटर-बराबर गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लें। दिन-भर में ५ से १० गोलियाँ तक चूसते रहने से ३ दिन में ही तीव्र सूखी खाँसी निर्मूल हो जाती है।

(४) सफेद पपरिया कत्था महीन पीस-छानकर खरल में डालकर ऊपर से अडूसा के पत्तों का रस डालकर खूब खरल करो। खूब घुट जाने पर मटर-बराबर गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लो। दिन में २-३ बार एक-दो गोलियाँ चूसते रहने से सब प्रकार की खाँसी नष्ट हो जाती है।

(५) वासा की जड़ की छाल २।। तोला खूब महीन पीसकर १।। माशा अफीम पानी में घोलकर खूब खरल करें। फिर गोली बनाने लायक थोड़ा घी मिलाकर कुल २० गोलियाँ बना लें। एक-एक गोली प्रातः-सायं सेवन करने से खांसी शीघ्र दूर हो जाती है।

(६) वासा के छायाशुष्क २।। तोले पत्ते लेकर १० छटाँक जल में पकावें और उसमें सोंठ, काली मिर्च २-२ माशा और शक्कर ६ माशा मिलाकर छानकर रख लें। २ से ३ तोले की मात्रा में इसके पीने से पुरानी खाँसी और श्वास में यथेष्ट लाभ होता है।

(७) अडूसा, नेत्रबाला, कूठ, पीपल, भारंगी, कमलकेशर–सेब चीजें समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। ३ से ६ माशे की माना में शहद के साथ इस चूर्ण को सेवन करने से खाँसी नष्ट होती है।

(८) छायाशुष्क अडूसे के पत्ते ५ तोला, मुलहठी १ तोला, सोंठ ८ माशा, काली मिर्च ४ माशा, पीपल छोटी ३ माशा, नौसादर २ माशा, मिश्री पाव भर, पिपरमेण्ट २ रत्ती। नौसादर, मिश्री और पिपरमेण्ट के सिवा सब चीजों को जौकुटकर एक सेर पानी में पकावें। चौथाई जल शेष रहने पर छानकर, मिश्री या चीनी और पिसा हुआ नौसादर डालकर मन्दाग्नि से शर्बत की चाशनी बना लें। शर्बत शहद से कुछ कम गाढ़ा चाटने योग्य हो। फिर खूब महीन पीसकर पिपरमेण्ट मिलाकर इस शर्बत को किसी डाटदार शीशी में रख लें। ३ से ६ माशे की मात्रा में यह शर्बत

अवस्थानुसार २-३-६ बार चाटने से हर प्रकार की खाँसी नष्ट हो जाती है।

(९) वासादि क्वाथ—अडूसा, सोंठ, नागरमोथा, भारंगी, चिरायता, नीम की छाल, समभाग ४-४ माशे लेकर एक सेर जल में पकाकर क्वाथ करें। आधा पाव जल शेष रहने पर छानकर शीतल होने पर ६ माशा शहद मिलाकर पीने से खाँसी और श्वास में निश्चय ही लाभ होता है।

(१०) अडूसा के हरे पत्तों को केले के हरे पत्ते में लपेटकर ऊपर से कपड़मिट्टी कर गर्म राख में पका लो। पक जाने पर मिट्टी-पत्ते हटाकर ६ माशे अडूसा के रस में एक माशा पीपल का चूर्ण और ३ माशा शहद मिलाकर चाटो। इससे निश्चित रूप से सब प्रकार की खाँसी नष्ट हो जाती है।

(११) अडूसा की जड़ की छाल २ तोला ३२ तोला जल में पकाओ जब चौथाई पानी शेष रह जाय, उतारकर छान लो। शीतल होने पर उसमें एक माशा पीपल का चूर्ण और ४ माशा शहद मिलाकर चाटो। दिन में २-३ बार इसका सेवन करने से सब प्रकार की खाँसी चली जाती है।

(१२) अडूसा की जड़ या पत्तों का स्वरस ६ माशा, शहद ६ माशा, साँभर नमक १ माशा—तीनों को मिला कुछ गुनगुनाकर प्रातः-सायं चाटने से सब प्रकार की खाँसी ३-४ दिनों में ही निश्चित रूप से नष्ट हो जाती है।

(१३) अडूसे का स्वरस २ तोला ६ लाशे शहद मिलाकर दिन में दो-तीन बार चाटने से पित्तज खाँसी और रक्तपित्त अवश्य दूर होता है।

(१४) अड़ूसे की जड़ की छाल, सोंठ, पीपल, चव्य और छोटी कटेरी समभाग ले कूट-पीसकर छान लो। ३ से ६ माशा की मात्रा में यह चूर्ण खाकर ऊपर से गर्म जल पीने से खाँसी में अवश्य लाभ होता है।

(१५) अड़ूसा के पत्ते, लिसोढ़ा, मुनक्का और मुलेठी ४-४ माशा लेकर पावभर पानी में पकाओ। एक छटाँक जल शेष रहने पर, मल-छानकर १ तोला मिश्री तथा एक तोला शहद मिलाकर पीने से वातज, पित्तज दोनों प्रकार की खाँसी अवश्य विनष्ट हो जाती है।

(१६) कफज खाँसी में—सोंठ, छोटी पीपल, काली मिर्च, अजमोद, चित्रक की छाल, सफेद जीरा और चव्य ३-३ तोला लेकर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लो। फिर वासा के पत्तों का रस आधा सेर, सवासेर घी, और उपरोक्त कल्क—तीनों को एक पीतल की कलईदार कड़ाही में डालकर मन्दाग्नि से पकाओ। घृतमात्र शेष रहने पर उतारकर छान लो और शीतल होने पर घी का चौथाई भाग शहद मिलाकर रख लो। यह घी बहुत गरम है। अतः इसे कफज खाँसी के अतिरिक्त दूसरी खाँसी में कदापि न दो। यदि बिना समझे-बूझे इसे पित्तज खाँसी में दे दिया गया, तो रोगी के प्राण संकट में पड़ जायेंगे। यह घी केवल कफज खाँसी में रामबाण है। मात्रा ६ माशे से २ तोला तक। घी खाकर ऊपर से पानी न पीना चाहिए।

(१७) वासा-पत्र-स्वरस १ तोला, कटेली का स्वरस १ तोला, शहद ६ माशे—तीनों चीजें एक में मिलाकर पीने से वातज, पित्तज; कफज तीनों प्रकार की खाँसी नष्ट हो जाती है।

बहुत खाँसी आने से उत्पन्न हुए सिर दर्द में वासा के पत्तों के क्वाथ में शहद मिलाकर पीना हितकारी है।

(१८) कासारि मधु—वासा के पीले पके ताजे पत्ते लेकर भवका (वारुणी यंत्र) में तहें लगाकर केवल पत्ते ही इतने भर दें कि पात्र कुछ ही खाली रह जाय। फिर इसमें अन्दाज से थोड़ा पानी डालकर मन्दाग्नि द्वारा निर्मल वाष्प-जल परिश्रुत कर लें। इस परिश्रुत अर्क के समान भाग शहद मिलाकर रख लें। यह कासारि मधु कास, श्वास, क्षयज कास, साधारण कास, जुकाम, बच्चों की काली खाँसी आदि पर शीघ्र ही अच्छा लाभ करता है। वयस्कों को ३ से ६ माशे तक, बच्चों को उनकी आयु के अनुसार १ से २-२।। माशे तक।

(१९) वासा घनसत्व १ तोला, पीपल, काली मिर्च, मुलेठी, काकड़ासिंगी, अनारदाना और जवाखार १-१ तोले लेकर खरल कर शहद में घोटकर मटर-बराबर गोलियाँ बना लो। इन गोलियों को दिन-रात में ५-६ वार चूसते रहने से खांसी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

(२०) वासा-पत्र आध सेर, समभाग कटेरी का पंचांग—दोनों को जौकुट कर ४ सेर जल के साथ मन्दाग्नि से पकावें। ऊपर ढक्कन बन्द रखें। लगभग ३ घण्टे पकने के बाद, दो सेर जल शेष

रहने पर छान कर उसमें २ सेर शक्कर मिलाकर शर्बत की चाशनी बनाकर रख लें। १ से २।। तोले तक की मात्रा में प्रातः-सायं इस शर्बत के पीने से श्वास-युक्त कास में बहुत लाभ होता है। यह शर्बत शीघ्र ही कफ को निकाल देता है। पुरानी खांसी, ब्रोंकाइटिस तथा मंद ज्वर में इस शर्बत के सेवन से शीघ्र ही लाभ होता है।

(२१) कासघ्न शार्कर—वासा के पत्ते, नीलोफर, उन्नाव, सूखे लिसोढ़े, मुलहठी छिली, गुलबनफशा, बनफशा, हंसराज, गावजवाँ, कुलिजन—प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोला लेकर जौकुट कर लें। फिर इसे ४ सेर जल में पकावें। एक सेर जल शेष रह जाने पर उतार लें। ठंडा होने पर उतारकर छान लें। फिर इसमें १ सेर मिश्री मिलाकर चटनी जैसी गाढ़ी चाशनी बना लें। ठंडा होने पर जवाखार, काकड़ासिंगी १-१ तोले लेकर दोनों को बारीक पीस-कर मिला दें और सुरक्षित रख लें। इस अवलेह को ६ माशे से १ तोला की मात्रा में चाटते रहने से सूखी खांसी आराम होती है। क्षतजकास में भी लाभदायक है। यह अवलेह हृदय को बल देता है।

(२२) अड़ूसा पत्र-स्वरस, अदरख स्वरस ६-६ माशे लेकर ३ माशे शहद मिलाकर प्रातः-सायं पीने से खाँसी में अवश्य ही लाभ होता है।

(२३) कासकर्त्तारी रस—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, पीपल, हरड़, बहेड़ा, अड़ूसा की जड़ की छाल—ये प्रत्येक एक से दुगुनी मात्रा में लें। अर्थात् पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, पीपल

४ तोला, हरड़ ८ तोला, बहेरा १६ तोला और वासा-मूल की छाल ३२ तोला लें। पहले पारा, गन्धक को खरल कर कज्जली बना लें। फिर अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिलाकर बबूल की छाल के क्वाथ की २१ भावनायें देकर खूब खरल करें। गोली वनने योग्य होने पर ३-३ रत्ती की गोलियाँ वनाकर सुखा-कर रख लें।

आवश्यकतानुसार १-१ गोली दिन में ३-४ बार शहद के साथ या दोषानुसार उचित अनुपान के साथ दें। यह रस समस्त प्रकार के कासरोगों को शीघ्र ही नष्ट कर देता है। इसके प्रयोग से पुराना दुर्गन्धयुक्त एवं संचित कफ पतला होकर, थोड़ा खाँसते ही सरलतापूर्वक निकल जाता है। पित्तज खाँसी में भी मिश्री के साथ सेवन करने से अच्छा लाभ होता है। बार-बार होनेवाली खाँसी में एवं गले की खराबी के कारण होनेवाली खाँसी में इस रस की एक-एक गोली मुख में रखकर दिन-रात में ६-७ गोली तक चूसने से फेफड़े, श्वास-प्रणाली और गले में जमा कफ निकल जाता है और खाँसी समूल नष्ट हो जाती है।

२६. श्वास (दमा) पर

(१) वासा की एक पाव जड़ की छाल का २ सेर पानी में क्वाथ बनाकर आध सेर रह जाने पर, आध सेर चीनी या मिश्री मिलाकर शर्बत योग्य चासनी बनाकर रख लें। ६ माशा या १ तोला की मात्रा में यह शर्बत २-३ बार पीने से श्वास और पुरानी खाँसी निर्मूल हो जाती है।

(२) अडूसा के एक भाग में २ भाग मिश्री या चीनी मिलाकर गुलकन्द बनाकर सेवन करने से श्वास-कास और क्षय में बहुत लाभ होता है।

(३) अडूसा के छाया में सुखाए हुए पत्तों का मोटा चूर्ण २ तोला लेकर आध सेर जल में पकाओ। आधा शेष रह जाने पर, छानकर उसमें सोंठ और पीपल का चूर्ण १॥-१॥ माशा तथा शहद १० तोला मिलाकर रख लो। इसे प्रातः-सायं २॥ से ५ तोला की मात्रा में सेवन करने से कफज-कास और श्वास में अतिशय लाभ होता है। यह योग कफनाशक है।

(४) वासा के पत्तों को छाया में सुखाकर पीस-छानकर समभाग मिश्री मिलाकर ६-६ माशा की मात्रा में प्रातः-सायं सेवन करने से श्वास-कास में लाभ होता है।

(५) जीर्ण श्वास में कफ अधिक बढ़ गया हो और श्वास का वेग बढ़ा हो तो वेग को शान्त करने और कफ को बाहर निकालने के लिए वासा के सूखे पत्ते और कुछ धतूरे के सूखे पत्ते चिलम में रखकर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

(६) वासा के १ पाव सूखे पत्तों के चूर्ण में ५ तोले गिलोय का रस और २ तोला कलमी शोरा मिलाकर सिगरेट बना लें। श्वास के वेग के समय यह सिगरेट पीने से दौरा तत्काल शान्त हो जाता है।

कफ-श्वांस रोगी का यदि कफ विशेष गाढ़ा हो गया हो तो गर्म चाय में वासा का रस, शहद, मिश्री और थोड़ा काला नमक मिलाकर पीना बहुत हितकारी है।

(७) वासा की विकसित कोपलें छाया में सुखाई हुई १½ पाव, कनेर की मुलायम कोपलें छायाशुष्क पाव भर, कटेरी का पंचांग कूटकर सूखा हुआ आधा सेर, तीनों को हाथ से मींजकर या खरल में जौकुट कर एक छोटी मटकी में भर दें, ऊपर से १ छटांक पिसा हुआ सेंधानमक डाल दें।

इस हाड़ी या मटकी में एक सकोरा ढक मटकी को अंगीठी पर चढ़ा दें लगभग १५–२० सेर लकड़ी के कोयलों की आग दें। मटकी से थोड़ा-थोड़ा धुआँ निकलता रहे। ३ घंटें में औषधि तैयार हो जायगी। स्वांग शीतल होने पर दूसरे दिन दवा निकालकर खूब घोटकर रख लें।

साधारणतः ३ से ४ रत्ती की मात्रा में चासनी या शहद में मिलाकर यह औषधि चटाई जाती है। गीली खाँसी में पान में रख कर खिलाएँ। पान में चूना, कत्था, सुपारी आदि लगा दें।

प्रातः खाली पेट, दोपहर को भोजन के पश्चात्, शाम को भोजन के बाद और रात को सोने से आधा घण्टे पूर्व औषधि सेवन कराना चाहिए। सूखी खाँसी हो या कफ नाममात्र को आता हो तो पान में नारियल का बुरादा या चूरा भी मिलाएँ। इस प्रकार गीली और सूखी दोनों प्रकार की खाँसियों की यह सुपरीक्षित सफल औषधि है।

प्रारंभिक श्वास जो ९ माह तक का हो, यह औषधि, चाशनी, शहद या शर्बत बनफशा से चटाकर ऊपर से धारोष्ण गो-दुग्ध पाव भर, पके हुए केले २, उत्तम गौ-घृत ६ माशा, शुद्ध शहद ३ माशा, पिसी मिश्री या चीनी १ तोला, सितोपलादि चूर्ण ३ माशे–

इन सबको खूब एक में मिलाकर चटा दें; यह प्रयोग प्रातः-सायं दोनों समय करना चाहिए। दोपहर और रात्रि को वासावलेह भी चटावें। एक सप्ताह में अवश्य लाभ प्रतीत होगा। फिर भी श्वास को समूल नष्ट करने के लिए कम से कम २ सप्ताह यह प्रयोग सेवन कराना आवश्यक है। श्वास, कासनाशक यह एक सुपरीक्षित प्रभावशाली योग है।

(८) यवान्यादि क्वाथ—अजवायन, अडूसा पत्र, पीपल और कुड़ा की छाल—प्रत्येक ६-६ माशे ले इनका क्वाथ बनाकर पीने से श्वासरोग नष्ट होता है।

(९) अडूसा की जड़ की छाल और पत्तों को पीसकर घी में पकाकर प्रातःकाल खाने से श्वास और क्षय में बहुत लाभ होता है।

(१०) अडूसा के पत्तों और मुंडी दोनों को १-१ तोला लेकर आध सेर पानी में औटाकर क्वाथ करें। आध पाव शेष रहने पर ६ माशा शहद मिलाकर पीने से खांसी और श्वासरोग आराम होता है।

(११) अडूसा के पत्तों का रस १ पाव, मुंडी का रस १ पाव, चीनी आधा सेर और जल एक सेर—सबको एकत्र मिलाकर पकाओ। जब पकते-पकते एक सेर जल रह जाय, उतारकर छान लो और बोतल में भरकर रख लो। इसमें से २-२ तोला रस प्रातः-सायं सेवन करने से खांसी, श्वास और फेफड़े के सब प्रकार के रोग नष्ट होते हैं।

(१२) अड़ूसा के बीज, नकछिकनी और बंगला पान सम-भाग ले किसी पात्र में रखकर आग में भून लो और एकत्र पीस-कर रख लो। ४ रत्ती औषधि बंगला पान में रखकर नित्य प्रातः-काल खाने से भयंकर श्वासरोग भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इस औषधि का चमत्कारिक प्रभाव देखकर रोगी आश्चर्य-चकित हो जाता है। श्वास की बहु-बार परीक्षित अव्यर्थ औषधि है।

(१३) वासा के पत्तों का रस, बेल-पत्र स्वरस और सरसों का तेल प्रत्येक ६-६ माशे–सबको एक में मिला, एक सप्ताह पीने से घोर श्वास रोग भी नष्ट हो जाता है। प्रभावशाली परीक्षित योग है।

(१४) वासा की जड़ की छाल, कुलथी, काकड़ासिंगी और सोंठ–सब समभाग मिलाकर २ तोले लेकर ३२ तोले जल में क्वाथ बनाओ। जब चतुर्थांश जल शेष रह जाय मल-छानकर रख लो। फिर उसमें ४ माशे पोहकर मूल का चूर्ण मिलाकर पी लो। इस क्वाथ को नित्य प्रातः-सायं पीने से कुछ ही दिनों में खांसी, श्वास, अरुचि, पीनस और हिचकी रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। अतिशय गुणकारी परीक्षित योग है।

(१५) श्वासनाशक अमोघ औषधि–एक सेर बहेड़े के छिलके ३ सेर जल में पकाओ। जब २ सेर पानी शेष रह जाय, उतार कर छान लो। उस काढ़े को एक मिट्टी के पात्र में भरकर आग पर चढ़ाओ। वासाक्षार, अपामार्ग क्षार, नागकेशर १॥-१॥

तोला और शुद्ध तूतिया १ माशे–इन चारों को एक कपड़े में बाँधकर पोटली बना लो। हाँड़ी के मुख पर एक लकड़ी रखकर; उस लकड़ी को पोटली में बाँधकर, पोटली को इस प्रकार लटकाओ कि पोटली काढ़े में डूब जाय। इसे मन्दाग्नि से पकाओ। जब सारा पानी जल जाय पोटली को निकालकर अलग रख दो। हाँड़ी की पेंदी में जो दवा जमी हुई मिले उसे खुरचकर रख लो। ४-४ रत्ती दवा प्रातः-सायं बताशे में रखकर खाने से थोड़े ही दिनों में श्वासरोग नष्ट हो जाता है। परीक्षित है।

(१६) अडूसे की जड़ की छाल का स्वरस, कटेली का स्वरस, अपामार्ग का स्वरस, मुनक्का का काढ़ा और मिश्री— प्रत्येक आधा-आधा सेर लेकर औटाओ। जब गाढ़ा हो जाय, तब उतारकर इसमें मुलहठी, वंशलोचन, पीपल, भारंगी, आँवला और सुहागे का लावा–प्रत्येक २॥-२॥ तोला लेकर चूर्ण करके उसमें मिला दो। ठंडा होने पर आध सेर शहद मिलाओ। यह अवलेह १ तो० प्रातःकाल और १ तो० सायंकाल चाटकर ऊपर से बकरी का दूध पीने से दमा और नई-पुरानी प्रत्येक की नई और पुरानी खाँसी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

(१७) वासा के पत्ते १००, आक के पत्ते १००, शुद्ध कुचला १। तो०, पीपल, पीपला मूल, साँभर नमक २॥-२॥ तोला, सोंठ २। तोला, अजवायन २ तोला, काला जीरा २। तोला– सबको एक हाँड़ी में भरकर मुख बन्द कर दो। गज भर गहरे-चौड़े गड्ढे में हाँड़ी को रखकर जंगली कण्डों की आग में फूंक दो। स्वांग शीतल होने पर निकालकर रख लो। प्रातः-सायं

४-४ रत्ती भस्म पान में रखकर खाने से खाँसी और श्वास में निश्चित लाभ होता है।

(१८) श्वास-कास पर अक्सीर अपामार्गासव

अपामार्ग २ सेर, वासा के पत्ते २ सेर, केले के नये नर्म पत्ते २ सेर, देशी गुड़ ४ सेर, जंगली वेर (झड़वेरी) की जड़ की छाल २ सेर। गुड़ को ६ सेर जल में भिगोकर, शेष औषधियों को जौकुटकर मिट्टी के पात्र में डालकर एक-दो बार मिला दो। दूसरे दिन यवक्षार १ छटाँक और सज्जीखार २ छटाँक, नौसादर पपड़िया २॥ तोला डाल दो। फिर पात्र का मुख बन्द करके कपड़मिट्टी कर १५ दिन तक रखा रहने दो। तत्पश्चात् मोटे मजबूत कपड़े से छानकर बोतलों में भर दो। बोतल कुछ खाली रहे, पूरी न भरो; क्योंकि यह आसव बढ़ने की सम्भावना रहती है।

६ माशे से १ तोले तक समभाग जल मिलाकर प्रातः-सायं यह आसव पीने से श्वास-कास पर अपूर्व लाभ होता है। दो-तीन मात्राओं से ही लाभ दिखाई देने लगता है।

(१९) वासादिवटिका—वासा के ८ तोले घनसत्व में आक की जड़ के छिलके का चूर्ण २ तो०, शुद्ध अफीम और कपूर १-१ तोला—सबको खूब खरलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लो। एक से २ गोली तक नित्य प्रातः-सायं खाते हुए संयम का पालन करने से श्वास, उरःक्षत, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, अतिसार, ग्रहणी आदि में यथेष्ट लाभ होता है।

(२०) श्वासारि अवलेह—अडूसा के पत्तों का रस आधा सेर, कटेरी का स्वरस, मुनक्के का काढ़ा आधा सेर और मिश्री आधा सेर–इन सबको एकत्र कड़ाही में पकाओ। अवलेह के समान गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतारकर रख लो और इसमें मुलेठी, असगन्ध, छोटी पीपल, भारंगी, बंसलोचन—इन सबका चूर्ण १-१ तोला और शहद आधा सेर–ये सब द्रव्य मिलाकर एक स्वच्छ पात्र में रख दो। प्रातः, मध्याह्न और सध्या समय १-१ तोला अवलेह चाटने से श्वास, खाँसी और क्षयज खाँसी का वेग शीघ्र ही शान्त हो जाता है। परीक्षित है।

३०. क्षय (राजयक्ष्मा या तपेदिक)

(१) अडूसे के पंचांग और पुष्पों के कल्क से सिद्ध किया हुआ घी, शहद मिलाकर सेवन करने से प्रबल वेगयुक्त कास, श्वास, ज्वर, पाण्डुरोग तथा क्षय में अत्यन्त लाभ होता है।

(२) अर्जन वृक्ष की छायाशुष्क छाल कूट-पीसकर छान लो। फिर इसमें अडूसे के पत्तों की ७ भावनायें देकर सुखाकर रख लो। ६ माशे से एक तोले तक की मात्रा में यह चूर्ण थोड़े घी, शहद और मिश्री के साथ चाटने से क्षयज खाँसी और ज्वर आराम होगा तथा हृदय की दुर्बलता दूर होती है।

(३) अडूसे का स्वरस १ सेर, स्वर्णमाक्षिक भस्म ८ तोला, मिश्री ८ तोला, छोटी पीपल का चूर्ण ८ तोला–इन सबको कलई-दार कड़ाही में पकाओ। जब अवलेह की भाँति गाढ़ा हो जाय, उतारकर ठंडा हो जाने पर ८ तोला शहद मिलाकर सुरक्षित रख

लो । इस वासावलेह को नित्य प्रातः-सायं १-१ तोला की मात्रा में सेवन करने से क्षय रोग, क्षयज खांसी, कफज रोग और बवासीर नष्ट होते हैं ।

(४) अड़ूसे का जौकुट किया हुआ पंचांग एक सेर लेकर ८ सेर जल में पकाओ । दो सेर रह जाने पर छानकर फिर काढ़े को मन्दाग्नि से पकाओ । आधा सेर रह जाने पर आधा सेर मिश्री मिलाकर अवलेह की भाँति तैयार कर लो । फिर इसमें १ तो० पीपल, १ तोला बंशलोचन और १ तोला असगन्ध का चूर्ण मिलाकर रख लो ।

यह अवलेह दिन में ३ बार ६ माशे से १ तोला तक की मात्रा में सेवन करने से राजयक्ष्मा, श्वास, कास और रक्तपित्त में आशातीत लाभ होता है ।

(५) अड़ूसे के पत्तों के दो तोला स्वरस में ६ माशे शहद मिलाकर पीने से क्षयज कास में अवश्य लाभ होता है । अनुपान में बकरी का दूध पीना चाहिए ।

(६) अड़ूसा के पत्तों को बाबूना के तेल में घोटकर लेप करने से फुफ्फुस प्रदाह (फेफड़ों की जलन) में लाभ होता है ।

(७) क्षय रोग का अत्युत्तम योग—अड़ूसे की जड़ की छाल १२ सेर कुचलकर ६० सेर जल में पकावें । चतुर्थांश जल शेष रह जाने पर इसको भलीभाँति मलकर छान लें और इसमें १२ किलो खाँड़ मिलाकर चाशनी तैयार करें । गाढ़ा शर्बत बन जाने पर और तार छोड़ने लगने पर निम्नलिखित औषधियाँ

बारीक पीसकर मिला दें—तेजपत्र, मीग-कूट, दालचीनी, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, छोटी इलायची, कायफल, सफेद जीरा, काला जीरा, चव्य, पीपलामूल, हर्र का बक्कल, तालीसपत्र, कुटकी; धनियाँ प्रत्येक ११ छटाँक बारीक पीसकर चाशनी में मिला दें तथा एक सेर शुद्ध शहद मिलाकर सुरक्षित रख लें।

६ माशे से १ तोला तक की मात्रा में दिन में ३ बार बकरी के गर्म दूध के साथ सेवन करने से श्वास, कास, खाँसी के साथ खून आना, उरःक्षत क्षय की सभी अवस्थाओं में अत्यन्त गुणकारी और स्थायी लाभदायक है।

(८) विशेष खाँसीवाले क्षय रोगी के लिए वासा परिश्रुत जल, यदि क्षय रोगी को खाँसी विशेष हो, कफ न निकलता हो, भूख कम लगती हो तो उसे सामान्य जल के स्थान पर वासा परिश्रुत जल पिलावें। विधि इस प्रकार है—

वासा के मोटे वृक्ष को मूल-सहित काटकर सुखाकर वायु-रहित स्थान में, भूमि को साफ करके उसको जलावें। जब वह निर्धूम हो जाय तब आग को बटोर कर मिट्टी का हौदा औंधा दें। ऐसा करने से आग बुझ जायगी। कुछ देर बाद ठंडा होने पर, राख को सूप से फटककर, इस कोयले को ऐसे घड़े में भरें, जिसकी तली में छोटा-सा छेद हो और छेद में एक साफ कपड़े की बत्ती लगी हुई हो। इसी प्रकार दूसरे घड़े की पेंदी में छेद कर एक बत्ती डालें फिर कोयले वाले घड़े के नीचे तीसरा घड़ा बिना छेद का रखें। ऊपर के घड़े का पानी टपककर कोयलेवाले घड़े में जायगा। फिर कोयले से छनकर नीचे वाले घड़े में इकट्ठा

होगा। रोगी को पीने योग्य जल नित्य इसी प्रकार तैयार करना होगा। एक बार घड़े में डाले हुए कोयले ७ दिन तक निरन्तर काम देते हैं। पश्चात् कोयले को बदल देना चाहिए।

इस जल के पीने से कफ सरलता से निकलने लगता है और गला साफ हो जाता है। किन्तु यदि रोगी के मूत्र में वीर्य जाता हो, तो यह जल न पिलावें।

यक्ष्माग्रस्त रोगी के कमरे या स्थान को वासाक्वाथ, तूतिया और कलई का चूना मिलाकर पोतना चाहिए और वासा के पत्तों की धूनी देते रहना चाहिए। क्षयग्रस्त रोगी को वासा की हवा लेना, वासा के वन में रहना और अडूसा के वृक्षों-पत्रों की कुटिया बनाकर रहना अत्यन्त हितकारी है।

३१. रक्तपित्त में

(१) वासा के पत्तों का रस, गूलर के कच्चे फलों का रस १-१ तोला, मिश्री २ तोला, छोटी इलायची का चूर्ण १ माशा सबको चावलों के धोवन के साथ पीने से रक्तपित्त में तत्काल लाभ होता है।

(२) अडूसा के फूल, पत्ते और कोपलें, किशमिश, फूल प्रियंगु, लालचन्दन और गिलोय सब समान १-१ तोले लें, आध सेर जल में पकावें। आध पाव जल शेष रहने पर ६ माशा शहद मिलाकर पीने से नाक, मुख, गुदा, लिंग और योनि-मार्ग से होने-वाला रक्त-स्राव बन्द होता है।

(३) वासा की जड़ की छाल २ तोला, सफेद चन्दन ६ माशा, खस ६ मांशा, नागरमोथा ६ माशा—सबको जौकुट कर एक पाव

जल में एक मिट्टी के नये पात्र में भिगोकर रात को ओस में रख दें और प्रातःकाल मल-छानकर इसकी २ मात्रायें बनाकर एक-एक मात्रा प्रातः पावभर गो-दुग्ध में मिश्री मिलाकर पीने से नाक, मुख, लिंग, गुदा या योनि-मार्ग से बहता हुआ रक्त बन्द हो जाता है।

(४) धान्यकादिहिम—धनियां, आंवला, दाख, पित्तपापड़ा प्रत्येक ६-६ माशे लेकर मिट्टी के नये पात्र में एक पाव पानी में भिगोकर रात को ओस में रखें। प्रातः मल-छानकर पीने से रक्त-पित्त शान्त हो जाता है।

(५) अडूसे के स्वरस में तालीसपत्र का चूर्ण और शहद मिलाकर पीने से रक्तपित्त, तमकश्वास, खाँसी, स्वरभंग और कफ, पित्त-विकार सभी नष्ट हो जाते हैं।

(६) अडूसा के पत्तों के रस में शहद और शक्कर मिलाकर पीने से रक्तपित्त शान्त होता है।

(७) केवल अडूसा के ही पत्तों का हिम बनाकर मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पीने से रक्तपित्त, खाँसी और ज्वर में यथेष्ट लाभ होता है।

(८) वासा को जड़, डंठल, फूल-फल सहित कूटकर अठगुने जल में पकावें। आठवां भाग जल शेष रहने पर छानकर समान भाग घृत मिलाकर पकावें। पकते समय वासा के फूलों का कल्क भी डालें। घृत सिद्ध हो जाने पर छानकर रख लें। विषम भाग शहद के साथ इस घृत का सेवन करने से रक्तपित्त नष्ट हो जाता है।

(९) अड़ूसापत्र, स्वरस, मिश्री तीनों ६-६ माशा एकत्र मिलाकर पीने से न केवल भयानक रक्तपित्त शान्त होता है, अपितु यक्ष्मा और खाँसी में भी बहुत लाभ होता है।

(१०) अड़ूसे के क्वाथ में कमलमिट्टी, फूल प्रियंगु, लोध्र, अंजन और कमलकेसर का चूर्ण तथा मिश्री और शहद मिलाकर पीने से भयंकर रक्तपित्त शान्त हो जाता है।

(११) अड़ूसा के पत्तो, दाख और हरड़ के काढ़े में मिश्री और शहद मिलाकर पीने से खाँसी, श्वास और रक्तपित्त में यथेष्ट लाभ होता है।

(१२) वासा-पत्र-स्वरस में फूल प्रियंगु, सोरठ की मिट्टी; लोध्र, निसोथ का चूर्ण और शहद मिलाकर पीने से मुख, नाक; गुदा, लिंग, योनि से रक्त बहना बन्द हो जाता है। रक्तपित्त रोग का अत्यन्त गुणकारी और तत्काल प्रभावशाली योग है।

(१३) हरड़ों को प्रतिदिन वासा-पत्र-स्वरस में खरल करो और रात को सुखा लो। सबेरे ही फिर ताजे रस में खरल करो और रात को सुखा लो। इस प्रकार सात दिन तक वासा-पत्र-स्वरस में हरड़ों को खरल करके रख लो। ५-६ माशे की मात्रा में यह हरड़ चूर्ण शहद के साथ सेवन करने से रक्तपित्त नष्ट हो जाता है।

(१४) उपरोक्त रीति से ७ दिन पीपलों को वासा-पत्र-स्वरस में खरल कर रख लो। इस पीपल चूर्ण को ३-४ माशे की मात्रा में शहद के साथ चाटने से रक्त-पित्त रोग शान्त हो जाता है।

(१५) अड़ूसा के पत्ते पीसकर ऊपर से केले या बरगद का पत्ता लपेटकर कपड़मिट्टी कर, आग में पकाकर उसका रस निकालकर शहद मिलाकर पीने से रक्तपित्त, खाँसी, ज्वर और क्षय रोग में लाभ होता है।

(१६) अड़ूसा-पत्र-स्वरस ६ मात्रा, शहद ३ मात्रा, छोटी पीपल १ मात्रा तीनों को एकत्र मिलाकर चाटने से रक्तपित्त रोग तीन दिन में शान्त हो जाता है। यह योग खाँसी और श्वास में भी बहुत गुणकारी है।

(१७) धाय के फूल और मिश्री के चूर्ण में अड़ूसा-पत्र-स्वरस मिलाकर खाने से रक्तपित्त का रक्तस्राव निश्चय ही बन्द हो जाता है।

(१८) धनिया, मुक्ताशुक्ति भस्म, प्रवाल पिष्टी, मुलेठी, सोना गेरू और मिश्री—सब समभाग ले कूट-पीस छानकर रख लो। आवश्यकतानुसार प्रातः-सायं ३-३ माशे यह चूर्ण खाकर ऊपर से ५ तोले वासा-पत्र-स्वरस पीने से मुख, नाक, लिंग, गुदा, योनि से रक्त गिरना बन्द हो जाता है।

(१९) अड़ूसे के पत्तों का स्वरस ६ माशे, शहद ६ माशे और मिश्री ६ माशे तीनों को एकत्र मिलाकर पीने से रक्तपित्त का रक्तप्रवाह निश्चय ही बन्द हो जाता है।

अड़ूसा रक्तपित्त की महौषधि है। अड़ूसा के स्वरस, क्वाथ और वासाघृत निश्चय ही रक्तपित्त में अतिशय हितकारी हैं। आयुर्वेद शास्त्र का कथन है :—

मध्वाटरुषक जैर्यदि तुल्य भागौ कृत्वानरः पिबति पुण्यतरः प्रभाते ।
तद्रक्त पित्तमणि दारुण मप्यवश्य माशु प्रशाम्यति जलैखि वह्नि पुंजः॥

अर्थात् जो व्यक्ति शहद और अडूसा के पत्तों के रस को समान भाग मिलाकर सबेरे ही चाटता है उसका रक्तपित्त शीघ्रता से उसी प्रकार शान्त हो जाता है जिस प्रकार की जल से अग्नि शान्त हो जाती है ।

३२. अम्लपित्त में

अडूसा पत्र, आंवला और छिलके रहित जव प्रत्येक २-२ तोला लेकर ४८ तोला जल में पकावें। १२ तोला जल शेष रहने पर छानकर रख लें। शीतल होने पर इसमें दालचीनी; इलायची और तेजपात का चूर्ण १ माशा एवं शहद २ तोला मिलाकर पीते रहने से थोड़े ही दिनों में अम्लपित्त शान्त हो जाता है ।

३३. हृत्कम्प (दिल की धड़कन) पर

अत्यधिक परिश्रम, भय, शोक, चिन्ता, अत्यन्त गर्मी, अत्यधिक चाय, मदिरा आदि कारणों से हृदय रोग उत्पन्न हो जाता है ।

थोड़ा परिश्रम करने से ही, भय, शोक, चिंता का कोई कारण उपस्थित हो जाने से या अचानक गोली या बन्दूक की जोरदार आवाज सुनने से हृदय की धड़कन बढ़ जाना, चित्त चंचल होना; मृत्यु भय की आशंका, नींद की कमी, पसली और छाती में पीड़ा होना, नाड़ी की गति बढ़ जाना आदि हृदय रोग के लक्षण हैं। यह एक सांघातिक रोग है । हृदय की गति बन्द हो जाने के कारण

तत्काल मृत्यु हो जाती है, जिसे हार्ट फेल होना कहा जाता है। यदा-कदा हृदय-शूल के कारण भी तत्काल मृत्यु हो जाती है।

(१) अडूसा के पाव भर फूलों में समान भाग मिश्री या चीनी मिलाकर यथाविधि शर्बत तैयार करके अवस्थानुसार ६ माशे से १ तोला तक शर्बत रुह केवड़ा और स्वच्छ शीतल जल मिलाकर प्रातः-सायं और दोपहर को पीते रहने से हृदय की धड़कन, घबड़ाहट और श्वास फूलने में लाभ होता तथा हृदय की गर्मी शान्त होती है।

(२) अर्जुन के वृक्ष की छाल का महीन चूर्ण करके अडूसा के पत्तों के स्वरस की ७ भावनाएँ देकर शीशी में भरकर सुरक्षित रखें। १ माशा चूर्ण शहद, मिश्री और गो-घृत के साथ सेवन करने से हृदय की धड़कन, शूल तथा उरःक्षत में विशेष लाभ होता है।

(३) अडूसे के पत्तों (जो छायाशुष्क हों) की बीड़ी बनाकर थोड़ी-थोड़ी देर में पीते रहने से कलेजे का दर्द दूर होता है।

३४. स्वरभंग या स्वरभेद

आवाज के फट जाने या भारी हो जाने के रोग को स्वरभेद अथवा स्वरभंग कहते हैं।

बहुत जोर से चिल्लाकर बोलने, ऊँची आवाज में पढ़ने, गले में कोई चोट लगने, जुकाम बिगड़ जाने, विष आदि पदार्थ खाने से स्वरभंग रोग उत्पन्न होता है।

स्वरभेद रोग ६ प्रकार का होता है—१–वातज २–पित्तज ३–कफज ४–सन्निपातज ५–क्षयज और ६–भेदज ।

वातज स्वर-भेद के लक्षण—यदि वायु के प्रकोप से स्वर-भंग होता है तो आवाज बिगड़ जाती है । प्राय: रोगी के नेत्र, मुँह; मूत्र और मल काले पड़ जाते हैं । पीड़ित व्यक्ति टूटा हुआ शब्द बोलता अथवा गधे की भाँति कर्कश स्वर निकालता है ।

पित्तज स्वर-भेद के लक्षण—पित्तज स्वर-भेद में रोगी के नेत्र, मुख, मल और मूत्र पीले हो जाते हैं । बोलने के समय उसके गले में जलन या दाह होती है ।

कफज स्वर-भेद के लक्षण—कफज स्वर-भेद में कंठ कफ से रुँधा रहता है । रोगी मंद-मंद और थोड़ा-थोड़ा बोलता है, रात की अपेक्षा दिन में अधिक बोलता है ।

सन्निपातज स्वर-भेद के लक्षण—सन्निपातज या तीनों दोषों का स्वर-भेद होने से तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं । यदि रोगी की बात समझ में न आए तो यह स्वर-भेद असाध्य है ।

क्षयज स्वर-भेद के लक्षण—क्षयज स्वर-भेद होने से रोगी के मुँह से धुवाँ-सा निकलता प्रतीत होता है । वाणी क्षीण हो जाती है—वास्तविक स्वर नहीं निकलता । जब ओज के क्षीण हो जाने से बोलने की सामर्थ्य नहीं रह जाती तब यह स्वर-भेद असाध्य हो जाता है । ओज का नाश नहीं हुआ हो तो साध्य रहता है । सारांश यह कि आवाज बिल्कुल न निकलने से रोग असाध्य हो जाता है ।

मेदज स्वर-भेद के लक्षण—मेदज स्वर-भेद होने से भेद या कफ से गला लिपा रहता है। मेद से स्वर-मार्ग रुक जाने के कारण प्यास बहुत लगती है। रोगी मुँह के भीतर ही धीरे-धीरे बोलता है। रोगी की बात समझ नहीं पड़ती और बड़ी देर में निकलती है।

असाध्य स्वर-भेद के लक्षण—क्षीण पुरुष का, वृद्ध का, बहुत दिनों का जन्मजात (पैदाइशी), स्थूलकाय व्यक्ति का और सन्निपातज स्वरभेद असाध्य है।

स्वर-भेद में स्मरणीय बातें—स्वर-भेद के रोगी को स्नेहन क्रिया करके वमन-विरेचन और वस्तिकर्म से शरीरशोधन करना चाहिए। फिर नस्य, मुखप्रक्षालन, धूम्रपान और अनेक प्रकार के कवल और अवलेह आदि से रोगी की चिकित्सा करनी चाहिए। जो चिकित्सा-विधि श्वास, कास में लिखी है, वह इस रोग में भी उपयोगी है।

(१) अडूसे के पत्तों के रस में तालीसपत्र का चूर्ण और शहद मिलाकर पीने से स्वर-भंग दूर होता है।

(२) अडूसे का पंचांग, कुलींजन, पीपल, बाँरने की पत्ती, मिर्च, तेजपत्र सबको समभाग ले, चूर्ण कर शहद में मिलाकर मटर बराबर गोली बना ले। इन गोलियों को मुख में रखकर चूसते रहने से स्वर-भग रोग नष्ट हो जाता है।

(३) अडूसे के पत्ते, ब्राह्मी, दूधिया, बच, हरड़ और पीपल—इन्हें समभाग पीस छानकर चूर्ण बना लो। २-४ माशे की मात्रा

लेकर शहद मिलाकर चाटने से स्वरभंग-रोग ठीक होकर आवाज सुधर जाती है। परीक्षित प्रयोग है।

स्वर-माधुर्य बढ़ाने के लिए—

अग्नि मन्थो वचा वासा पिप्पली मधु सैन्धवा।
सप्त रात्रि प्रयोगेन किन्नरैरिव गीयवे॥

अग्निमंथ, वच, अडूसा, पीपल, सेंधा नमक ये सब चूर्णकर शहद में मिलाकर ७ दिन सेवन करने से स्वर किन्नरों की भांति मधुर हो जाता है।

ज्वर

सभी जानते हैं कि जिस रोग में शरीर गर्म हो जाता है; शरीर में पीड़ा होती है उसे ज्वर कहते हैं। जिस रोग में पसीना न आवे, शरीर बहुत गर्म हो, सारे शरीर में दर्द और जकड़न-सी हो उसे ज्वर कहते हैं, ज्वर के साधारण लक्षण यही हैं। ज्वर में शारीरिक और मानसिक संताप अवश्य होता है। बिना सन्ताप ज्वर नहीं होता।

पौराणिक मतानुसार ज्वर की उत्पत्ति रुद्र-कोप से हुई है। चरक में लिखा है क्रोध से पित्त पैदा होता है। इसलिए क्रोध से पैदा होने के कारण ज्वर की प्रकृति पैत्तिक है। अथवा यों समझिए कि ज्वर का स्वभाव गर्म है। सभी प्रकार के ज्वरों में पित्त का कोप होता है, इसी से ज्वर में उष्णता उत्पन्न होती है।

संसार में जितने रोग हैं, उनमें ज्वर सबसे सबल और सर्वोपरि है। यों तो मनुष्य के प्राण लेने वाले और उसे भयंकर कष्ट

देने वाले यक्ष्मा, गुल्म, अर्श, भगंदर, प्रमेह, उन्माद, अपस्मार; मृगी इत्यादि अनेक रोग हैं, पर ज्वर के समान घातक, उपद्रव पर उपद्रव उत्पन्न करनेवाला, अनेक रोगों को जन्म देनेवाला, जन्म-काल से मरण-काल तक मनुष्य के साथ रहनेवाला अन्य कोई रोग नहीं है। इसी ज्वर को प्राचीन मुनियों ने 'रोगराज' कहा है। चरक का कथन है कि मनुष्य के जन्म लेने के समय ज्वर रहता है और उसके मरण के समय भी ज्वर रहता है।

ज्वर के कारण—वमन-विरेचन आदि के अनियमित होने, अधिक होने या बिगड़ जाने, किसी प्रकार की चोट, कोई कठिन रोग उत्पन्न हो जाने, शरीर में विद्रधि आदि उठने और पकने, किसी तीक्ष्ण दवा के परिपाक, अधिक परिश्रम, अजीर्ण, क्षय, विष, तीव्र दूषित गन्ध, शोक, क्रोध, मन की शंका, ग्लानि, भय; भूत की शंका इत्यादि कारणों से ज्वर उत्पन्न होता है। मिथ्या आहार-विहार ज्वर का मुख्य कारण है। अनुचित आहार-विहार के कारण वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष आमाशय में जाकर रस को दूषित कर, आमाशय की अग्नि की ऊष्मा को बाहर निकालकर ज्वर उत्पन्न करते हैं।

अधिक समय तक ज्वर रहने से अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं और रोगी निरन्तर क्षीण होता चला जाता है। लक्षण-भेद से ज्वर बहुत प्रकार के होते हैं। पर चिकित्सा कार्य की सुविधा के विचार से ज्वर आठ प्रकार का माना गया है। १—वात ज्वर, २—पित्त ज्वर, ३—कफ ज्वर, ४—वात-पित्त ज्वर,

५—पित्त-कफ ज्वर, ६—वात-कफ ज्वर, ७—सन्निपात ज्वर, ८—आगन्तुक ज्वर।

इसके अतिरिक्त विषम ज्वर होता है। जिस ज्वर का वेग विषम होता है, कभी जोर से चढ़ता है, कभी धीमा, कभी किसी समय आता है, कभी किसी समय, उसे विषम ज्वर कहते हैं। मुख्यतया विषम ज्वर ५ प्रकार के होते हैं। १—सन्तत, २—सतत, ३—अन्यद्यु, ४—तृतीयक और, ५—चातुर्थिक।

एलोपैथिक मतानुसार मलेरिया ज्वर की उत्पत्ति 'एनाफिलीज' नामक एक विशेष प्रकार के मच्छरों के काटने से होती है।

वात-ज्वर के लक्षण—शरीर का काँपना, ज्वर का कभी तेज, कभी मन्द हो जाना, कंठ, ओठ, मुख या तालू का सूखना, छींक और नींद न आना, मुख का स्वाद बिगड़ जाना या कसैला हो जाना, दस्त न होना या थोड़ा और सूखा होना, जंभाई आना, पेट में अफारा और हल्का-हल्का दर्द होना, ये लक्षण वात-ज्वर के हैं।

पित्त-ज्वर के लक्षण—तेज ज्वर, पतले दस्त, कम नींद, वमन, उबकाई, कंठ, ओठ, मुख, नाक पकना, पसीना आना, रोगी का बकवाद करना, मुख का स्वाद कड़ुवा रहना, बेहोशी, पेट या सारे शरीर में जलन, नशा-सा जान पड़ना, प्यास अधिक लगना, मल-मूत्र और नेत्र पीले हो जाना, तथा घुमरी-सी आना, ये लक्षण पित्त-ज्वर के हैं।

कफ-ज्वर—शरीर गीले कपड़े से ढका-सा जान पड़े, मंद-मन्द ज्वर हो, आलस्य हो: मुँह का स्वाद मीठा हो, मल-मूत्र सफेद हो, सारा शरीर जकड़ रहा हो, पेट भरा-सा जान पड़े, खाने की इच्छा न हो, शरीर भारी हो, जाड़ा-सा लगे, जी मिचलावे, रोमांच हो, नींद अधिक आवे, जुकाम हो, भोजन में अरुचि हो, खाँसी आवे और नेत्र सफेद हों—ये लक्षण कफ ज्वर के हैं। इसके अतिरिक्त शरीर में पीड़ा, मुँह से पानी गिरना, सफेद फुन्सियाँ होना, वमन होना, तन्द्रा जाड़ा लगना और गर्मी अच्छी मालूम होना, मन्दाग्नि, हृदय या छाती का कफ से घिरा-सा मालूम होना–इत्यादि लक्षण कफ-ज्वर के होते हैं।

सन्निपात ज्वर—थोड़ी-थोड़ी देर में गर्मी-सर्दी लगना, हड्डियों, जोड़ों और सिर में दर्द होना, आँखों से आँसू गिरना, आँखें काली, लाल, फटी-सी अथवा भीतर को गड्ढों में घुसी हुई अथवा टेढ़ी-सी प्रतीत होना, कानों में दर्द या शब्द होना, गले में काँटे पड़ना, तन्द्रा, आँखें अधखुली हों, बेहोशी हो, रोगी अनर्गल प्रलाप करे, खाँसी, श्वास, भोजन से अरुचि, शरीर घूमना, जीभ आग से जली हुई के समान अथवा गाय की जीभ के समान खुरदुरी होना, सारे शरीर का शिथिल हो जाना, थूक में कफ मिला रक्त पित्त निकलना, सिर में प्रबल पीड़ा होने से रोगी का इधर-उधर सिर हिलाना, अथवा मस्तक का धर-धर पटकना, प्यास अधिक लगना, नींद न लगना, छाती में दर्द होना, पसीना बहुत कम आना, मल-मूत्र बहुत देर में होना, शरीर बहुत दुबला न होना, कंठ में निरन्तर आवाज होना, शरीर में फुन्सियाँ निकल आना, रोगी का

कम बोलना या धीरे-धीरे बोलना या बिल्कुल न बोलना, नाक, कान आदि पक जाना, पेट फूला-सा जान पड़ना—ये लक्षण सन्निपात ज्वर के हैं।

ज्वर की सर्वोपरि चिकित्सा लंघन या उपवास है। वात-ज्वर ७ दिन में, पित्त-ज्वर १० दिन में और कफ-ज्वर १२ दिन में पचता है। अतः इन ज्वरों में इतने-इतने दिन लंघन करने से ज्वर का विजातीय पदाथ नष्ट हो जाता है। इन अवधियों के पश्चात् शान्तिकारक औषधि और हल्का भोजन देने से रोगी सुगमतापूर्वक रोगमुक्त हो जाता है।

३५. वात-ज्वर

(१) अडूसा की जड़ की छाल, एरंड की जड़ की छाल; जवांसा, सोंठ, कुटकी, पाठा, कचूर—इन सबका काढ़ा बनाकर पीने से श्वास-खाँसी तथा शूल सहित वात-ज्वर नष्ट होता है।

(२) वासा पत्र, मुनक्का और हरड़—इन तीनों का क्वाथ बनाकर शहद तथा मिश्री मिलाकर पीने से वात-ज्वर में बहुत लाभ होता है।

३६. पित्त-ज्वर

(१) अडूसा-पत्र और आँवला समभाग जौकुटकर सायंकाल मिट्टी के पात्र में पावभर जल में भिगोकर ओस में रखें। प्रातःकाल मल-छानकर १ तो० शहद मिलाकर पीने से पित्त-ज्वर नष्ट होता है।

(२) अडूसा के १ तोले पत्ते पाव भर पानी में पकाकर, मिश्री मिलाकर पीने से पैत्तिक ज्वर की गर्मी से बढ़ी हुई घबड़ाहट मिटती है।

(३) अडूसा-पत्र, धनियाँ, फूल प्रियंगु, पित्तपापड़ा, कुटकी तथा चिरायता—सब समभाग ३-३ माशे ले काढ़ा बनाकर चीनी मिलाकर पीने से प्यास, दाह, रक्तपित्तयुक्त पित्त-ज्वर नष्ट होता है।

(४) वासा-पत्र, धनियाँ, आँवला, काले मुनक्का, पित्त-पापड़ा—पांचों ढाई-ढाई तोले लेकर मिट्टी की नई हांड़ी में पाव-भर जल में भिगोकर रात को ओस में रख दें। प्रातः मल-छानकर इसका जल पीने से पित्त-ज्वर का दाह तथा प्यास शान्त हो जाती है।

(५) अडूसा-पत्र, नीम-पत्र तथा पटोल-पत्र—तीनों का चूर्ण बनाकर, ६ माशा चूर्ण फाँककर शीतल जल पीने से पित्त-प्रकोप नष्ट होकर पित्त-ज्वर शांत होता है।

(६) वासाहिम—वासा के २॥-३ तोला पत्तों को छैगुने जल में भिगोकर रात को ओस में रखें। प्रातःकाल मल-छानकर, इसमें मिश्री या चीनी मिलाकर पीने से पित्त-ज्वर, खाँसी और रक्त-पित्त नष्ट हो जाता है।

३७. कफ-ज्वर

वासा-पत्र, कटेली, लोध, कूठ और परवर इनको जल में सिल पर पीसकर खाने से कफ-ज्वर नष्ट होता है।

(२) अडूसा के पत्ते और जड़ की छाल तथा दशमूल का काढ़ा बनाकर शहद मिलाकर पीने से कफ-ज्वर का आना बन्द हो जाता है।

(३) अडूसा-पत्र या जड़ की छाल, अजवायन, पीपल, पोस्त का बक्कल—इनका काढ़ा बनाकर पीने से खाँसी-श्वास-युक्त कफ-ज्वर दूर होता है।

३८. पित्त-कफ ज्वर

अडूसा के फूल और पत्तों के २ तोला रस में ३ माशा शहद और मिश्री मिलाकर सेवन करने से पित्त-कफ-ज्वर और कामला नष्ट होता है।

३९. सन्निपात ज्वर

(१) पुटपाक विधि से निकाला हुआ वासा का स्वरस, अदरख का रस और तुलसी-पत्र-स्वरस, मुलहठी का चूर्ण और शहद मिलाकर पीने से सन्निपात-ज्वर में बहुत लाभ होता है।

(२) अडूसे की जड़ की छाल २ तोला, सोंठ ३ माशा; काली मिर्च १ माशा—इनका क्वाथ बनाकर शहद मिलाकर पीने से त्रिदोषज-ज्वर नष्ट होता है।

४०. कफयुक्त जीर्ण ज्वर

अडूसे के पंचांग और गिलोय को १-१ तोले ले आध सेर जल में अष्टमांश क्वाथ बनाकर, पीपल का चूर्ण ३ माशे और शहद ६ माशे मिलाकर पीने से कफ-युक्त जीर्ण ज्वर दूर होता है।

४१. इन्फ्लुएंजा में

वासा के पत्ते ७ नग, सोंठ, भारंगी, बहेड़े का छिलका, हल्दी और मुलहठी ३-३ माशे तथा कटेरी की जड़ ४ माशा—इन सबको कूटकर १० तोला जल में धीरे-धीरे पकावें। आधा पानी शेष रहने पर कपड़े से छानकर उस गाढ़े रस को थोड़ा गरम ही गरम प्रातः-सायं दोनों समय थोड़ा शहद मिलाकर रोगी को पिलावें। यह एक मात्रा है। इससे इन्फ्लुएंजा ज्वर में अवश्य लाभ होता है।

ज्वर की अवस्था में जब-जब रोगी को प्यास लगे, तब-तब अडूसा पत्र डालकर उबाला हुआ पानी पीने के लिए देने से प्यास अधिक नहीं लगती और ज्वर का वेग भी शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

४२. मलेरिया पर

(१) एक सेर अडूसे के पंचाग को ८ सेर जल में भिगोकर, १२ घन्टे बाद उसका वाष्प-यंत्र से अर्क निकालकर ४-४ तोला की मात्रा में प्रातः-दोपहर और सायंकाल पीने से मलेरिया ज्वर दूर होता है। इस दवा के सेवनकाल में दूध बिल्कुल न लें और हल्का भोजन करें। यह अर्क इन्फ्लुएंजा ज्वर में भी लाभदायक है।

(२) अडूसा-पत्र, सम्हालू, गिलोय, भृङ्गराज, इन्द्रजो, पंवार के बीज, सोंठ, कटेली, अजवाइन—इन सबका क्वाथ बनाकर पीने से शीत ज्वर नष्ट होता है।

तृषा-रोग

बार-बार पानी पीने पर भी प्यास शान्त न होने की व्याधि को तृषा-रोग कहा जाता है। किसी भी कारण से पित्त और वायु अधिक बढ़ जाने से जब जल-वाहक स्रोत दूषित हो जाते हैं, तब मनुष्य को प्रबल प्यास लगती है।

४३. पित्तज तृषा में

पित्तज तृषा वाले को शीत, कटु और तरल पदार्थ सेवन कराना हितकारी है।

अडूसा, परवल और नीम के पत्ते समभाग लेकर महीन पीस लो। ६ माशे की मात्रा में इन्हें खिलाकर खूब शीतल जल पिलाओ और वमन कराओ। वमन होते ही पित्त-विकार दूर होकर प्यास शान्त हो जायगी। पित्तज प्यास में वमन कराने के लिए यह योग बहुत ही उत्तम और सुपरीक्षित है। इसके पश्चात् यदि कुछ कसर रह जाय तो अडूसे की जड़ की छाल, नीम की छाल, धनियाँ, सोठ, और मिश्री का काढ़ा पिलाओ। इस काढ़े से निश्चय ही पित्त-विकार शान्त होकर तृषा मिट जायेगी।

पित्तज तृषा में प्रलाप, मूर्छा, भ्रम, मुख सूखना, दाह और मुँह का स्वाद कड़ुवा रहना ये मुख्य लक्षण हैं।

कफज तृषा—जब कफ किसी कारण से कुपित होता है तब वह जठराग्नि को आच्छादित कर लेता है। उस समय जठराग्नि की गर्मी रुककर अधोगत जलवाही स्रोतों को सुखाकर तृषा रोग उत्पन्न कर देती है।

जामुन तथा आम की कोपलें, धान की खील, चन्दन और धाय के फूल—सबको समभाग ले पीसकर चूर्ण बना लो। इस चूर्ण को अडूसा-पत्र-स्वरस में मिलाकर चाटने से कफज प्यास, दाह, मूर्च्छा आदि नष्ट होते हैं।

४४. मूत्राघात

(१) किसी कारण पेशाब रुक जाने या जलन-कड़क के साथ बूँद-बूँद होने की दशा में अडूसे के पत्ते और खरबूजे के बीजों की गिरी १-१ तोला पाव-डेढ़ पाव पानी में पीस-छानकर मिश्री मिलाकर पीने से पेशाब खुलकर होने लगता है तथा मूत्र-संबंधी विकारों में लाभ होता है।

(२) अडूसा के फूलों को रात के समय मिट्टी के पात्र में पाव-डेढ़ पाव पानी में भिगोकर ओस में रख दें। प्रातःकाल मल-छानकर मिश्री या शक्कर मिलाकर पीने से पेशाव की जलन और सुर्खी दूर होकर पेशाब खुलकर होता है।

४५. सुजाक में

अडूसा के पत्तों के काढ़े में ३० बूँद चन्दन का तेल मिलाकर पीने से सुजाक में बहुत लाभ होता है।

४६. उपदंश (आतशक, गर्मी) में

(१) वासा-पत्र-स्वरस के साथ शुद्ध गन्धक का सेवन करने से उपदंश दूर होता है।

(२) वासा की जड़ की छाल को चोबचीनी के क्वाथ में ७ दिन भिगो रखने के पश्चात् शुष्क कर महीन चूर्ण कर लें।

यह चूर्ण १ माशा की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने से पुराना उपदंश रोग भी दूर हो जाता है।

४७. शुक्र-प्रमेह

अड़ूसा के सूखे फूलों को कूट-छानकर उसमें समभाग वंग-भस्म मिलाकर, काहू, खुर्फा और खीरा के बीजों की गिरी के साथ सेवन करने से शुक्र-प्रमेह में अवश्य लाभ होता है।

४८. वीर्य विकारों पर

वासा के घनसत्व को उचित मात्रा में प्रातः-सायं सेवन कर ऊपर से शीतल जल पीने और पुष्टिकर आहार लेने से वीर्य-विकार नष्ट होता है।

४९. वायुगोला में

अड़ूसे की पीली पत्तियों को तवे पर सेंककर पेट पर रखकर ऊपर से कपड़ा बाँध लेने से वायुगोले का कष्ट शीघ्र ही कम हो जाता है।

५०. उदरस्थ वात-वेदना तथा हाथ-पैर की ऐंठन पर

अड़ूसे के पत्तों का स्वरस समान भाग तिल-तेल में पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर इस तेल की मालिश से उदरस्थ वात-वेदना और हाथ-पैरों की ऐंठन दूर होती है।

५१. पेट के वायु विकार में

वासाक्षार ४ रत्ती से लेकर १ माशे की मात्रा में सेवन करने से वातजन्य ज्वर, आध्मान (अफरा), विशेषतः भोजन के बाद

पेट का भारी हो जाना, मन्द-मन्द पीड़ा होना दूर होता है। यदि वासाक्षार तैयार न हो तो वासा की जड़ की छाल का चूर्ण बनाकर, उसमें चौथाई भाग अजवायन का चूर्ण और अजवायन के चूर्ण से आधा भाग सेंधानमक मिलाकर नीबू के रस में खूब खरल कर १—१ माशे की गोलियाँ बना लें। भोजन के पश्चात् १ से ३ गोली तक सेवन करें।

५२. उदर कृमि

अडूसे के पत्तों का रस २ तोला पीने से आँतों के कृमि नष्ट होते हैं और आमाशय में सड़न नहीं होने पाती।

५३. गुदा में कफवात से पीड़ा होने पर

गुदा में कफवात से पीड़ा हो, अत्यन्त कठिन गुद-कीलक रोग हो, तो अडूसे के पत्तों की पोटलियों द्वारा सेंक करने से शीघ्र लाभ होता है।

५४. रक्तार्श में

(१) अडूसा के पत्तों और मूल की छाल का क्वाथ बनाकर पीने से खूनी बवासीर में खून आना बन्द होता है।

(२) अडूसा के पत्तों और सफेद चन्दन का समभाग महीन चूर्ण ४-४ माशे प्रातः-सायं सेवन करने से बवासीर में बहुत लाभ होता है—खून का गिरना बन्द हो जाता है।

बवासीर के मस्सों में सूजन हो तो अडूसा के पत्तों के क्वाथ की भाफ लेने से सूजन दूर होती है।

५५. भगन्दर की सूजन

अड़ूसा के पत्तों को पीसकर थोड़ा नमक मिलाकर गर्मकर बाँधने में भगन्दर की सूजन मिटती है ।

५६. नेत्र-रोगों में

(१) बिलनी या गुहेरी में अड़ूसा के ताजे पत्तों को गर्मकर बाँधने से आँख के गोलक की पित्तशोथ (गुहेरी) की सूजन और पीड़ा दूर होती है ।

(२) अड़ूसा के ताजे फूलों को आँख में बाँधने से आई हुई आँख की पीड़ा, सूजन और लाली दूर होती है ।

५७. मुखपाक और मसूढ़ों की सूजन में

मसूढ़ों में सूजन और मुख में छाले हो जाने पर वासा की जड़ का क्वाथ बनाकर मुँह के भीतर उसकी भाफ लेने और कुल्ला करने से सूजन और छाले ठीक होते हैं । केवल वासा की जड़ मुख में रखकर चवाने से भी लाभ होता है ।

केवल मुँह में छाले हों तो वासा के पत्ते चबा-चबाकर उसके रस को चूसते रहने से लाभ होता है । फोक को थूक देना चाहिए ।

(२) अड़ूसा की डाल की दातून करने से भी मुख-रोग दूर हो जाते हैं । वासा के क्वाथ में शहद और गेरू मिलाकर मुख में धारण करने से और कुल्ला करने से भी मुख-पाक और दांतों से खून आना बन्द होता है ।

डाढ़ या दांत में खोखला हो जाने पर दांत के खोखले में वासा तत्व भर देना चाहिए । इससे दांतों में कीड़े लगने का भय नहीं रहता ।

उदर-विकार

५८. मन्दाग्नि-उदरशूल पर

अडूसे की जड़ की छाल ८ तोला, अजवायन २ तोला, सेंधा-नमक एक तोला—सबको चूर्ण कर नींबू के रस में खरल कर रख लें। एक माशा चूर्ण गरम जल के साथ सेवन करने से उदर-शूल; पेट का भारीपन और मन्दाग्नि आदि उदर व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

५९. अतिसार में

(१) अतिसार में कब्ज मिटाने और पुराने मल को निकाल कर आमपाचन के लिए वासा के पत्तों का रस लेना हितकारी है।

(२) अडूसे की जड़ का काढ़ा बनाकर, उसमें थोड़ा काला नमक और ६ माशा सौंफ का चूर्ण मिलाकर पीने से पेचिश में लाभ होता है।

(३) वृद्ध गंगाधर चूर्ण—अडूसा की जड़ की छाल, नागर-मोथा, सोंठ, धाय के फूल, लोध, नेत्रबाला, कच्चे बेल-फल का गूदा, मोचरस, पाठा, इन्द्रजौ, कुड़े की छाल, आम की गुठली की गिरी, लज्जालु और अतीस—समभाग ले, कूट-पीसकर कपड़छन चूर्ण बनावें। २ से ४ माशे की मात्रा में यह चूर्ण शहद के साथ खाकर ऊपर से चावल का मांड़ पियें। इस चूर्ण के सेवन से सब प्रकार के भयंकर अतिसार, रक्तातिसार, मरोड़ और संग्रहणी में शीघ्र ही पूर्ण लाभ होता है।

६०. पांडु–कामला

अत्यधिक अम्लपदार्थों के खाने, अधिक मद्यपान, मिट्टी खाने, दिन में सोने, अत्यन्त तीक्ष्ण पदार्थ खाने, अधिक मैथुन करने इत्यादि कारणों से वात, पित्त और कफ कुपित होकर रुधिर को बिगाड़कर त्वचा के रंग को पीला कर देते हैं। इसी को पाण्डु या पीलिया कहते हैं।

जो पाण्डु रोगी अधिक पित्तजनक पदार्थों का अधिक सेवन करता है उसका पित्त कुपित होकर रक्त और मांस को दूषित कर देता है, इसी से कामला रोग होता है। इस रोग में नेत्र अत्यन्त पीले हो जाते हैं, शरीर की त्वचा, नाखून और मुख भी पीले हल्दी के रंग के हो जाते हैं। मल-मूत्र पीले या लाल रंग के होते हैं। कामला रोग होने से शरीर की इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, हृदय में जलन होती है, भोजन नहीं पचता, अन्न से अरुचि हो जाती और शरीर दुर्बल हो जाता है।

(१) एक तोला वासा-पत्र के साथ ६-६ माशा कासनी और कलमीशोरा घोट-छानकर पावभर जल मिलाकर पीने से पेशाब खूब खुलकर होता है और कामला रोग दूर हो जाता है।

(२) अडूसे की जड़ की छाल, सोंठ, मिर्च, पीपल, चिरायता, नीम की छाल, कुटकी और गिलोय ३–३ माशा—इनका काढ़ा बना, शीतल करके उसमें शहद मिलाकर पीने से पांडु-कामला दोनों आराम होते हैं।

(३) अडूसे की जड़ की छाल, हर्रा, बहेरा, आंवला; गिलोय, कुटकी, चिरायता और नीम की छाल, ये सब ३-३ माशे

ले, आध सेर जल में पकाओ। चौथाई जल शेष रहने पर उतारकर छान लो। शीतल होने पर ६ माशा शहद मिलाकर पीने से पित्तज पाण्डु, कामला और हलीमक निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। परीक्षित है।

पाण्ड कामला में पुराने शालि चावल, जौ, गेहूँ की रोटी, मूँग, मसूर की दाल, लौकी, परवल आदि का साग, लोहे की कड़ाही में पकाया हुआ दूध, मूली, पालक का साग (बिना पकाये कच्चा ही खाया जाय तो और अधिक गुणकारी है), सेंधानमक और गाय का दूध पथ्य हैं।

भर पेट भोजन, मछली-मांस, गरम मसाले, पूड़ी-कचौड़ी, वनस्पति घी की मिठाइयाँ, खोवे की मिठाइयाँ तथा गुरुपाक गरिष्ट पदार्थ अपथ्य हैं।

६१. पार्श्व शूल, हृद्रोग, गुल्म आदि में रसोन घृत

लहसुन छिला हुआ, अडूसा पंचांग, कटेरी १-१ सेर लेकर सबको एकत्र कूटकर ३२ सेर जल में पकावें। ८ सेर पानी शेष रहने पर छान लें। तत्पश्चात् २ सेर घी में २० तोला बीज निकाले हुए मुनक्का, ३ सेर गाय का दूध तथा ५-५ तोला लहसुन का स्वरस और अडूसे के पत्तों का कल्क एवं उपरोक्त मिलाकर मन्दाग्नि से पकावें। जलांश जल जाने पर छान लें और ठंडा होने पर उसमें १० तोला खांड़, २० तोला दूध और २॥ तोला वंशलोचन का चूर्ण मिलाकर सबको मथनी से मथकर सोने या चाँदी के पात्र में (अभाव में कांच या चीनी मिट्टी के पात्र में) सुरक्षित रखें।

यह घृत पार्श्व-शूल, हृद्रोग, गुल्म, खाँसी, श्वास, ज्वर, अरुचि, प्लीहोदर, क्षतक्षीणता तथा शोथ को नष्ट करता है। जीवन, बृंहण और वृष्य है।

वात विकार

६२. आमवात

अडूसा की जड़ की छाल का चूर्ण सेवन करने और पत्तों का रस लेप करने से आमवात में लाभ होता है।

६३. वातरक्त में

अडूसा पत्र, अमलतास तथा गिलोय ६-६ माशा लेकर आध सेर जल में पकाकर क्वाथ बनायें। फिर इस क्वाथ में २॥–३ तोला रेंड़ी का तेल डालकर पियें। इस क्वाथ के पीने से शरीर में उत्पन्न हुआ वातरक्तजन्य विकार नष्ट होता है।

६४. गठिया में

अडूसा, सम्हालू, थूहर, सहिंजन, बकायन, धतूर, आक सबकी पत्तियां समान ले पीसकर टिकिया बनाकर, सरसों के तेल में पकाकर छान लें। गठिया के दर्दवाले स्थान पर इस तेल की मालिश करने से बहुत ही आराम मिलता है।

६५. पक्षाघात (फालिज या लकवा)

अडूसा के पत्ते १० तोला, रास्ना २ सेर, अजवायन एक सेर; धनियां १ पाव, नागर मोथा, देवदारु ५-५ तोला, पियर बांसा (कटसरैया) १० तोला, सौंफ, शतावर, कचूर, बड़ा गोखरू;

हरड़ का बक्कल, सोंठ, विधारा, बहेड़े का बक्कल, श्वेत जीरा, वच, कटेरी, अतीस, छोटा गोखरू, जवांसा, एरंड की जड़ की छाल, चव्य, छोटी पीपल, सोंठ की जड़, खरेंटी प्रत्येक ५-५ तोला—सब द्रव्य १६ सेर जल एक मटके में भरकर २४ घंटे भिगाने के बाद भवके द्वारा ७ बोतल अर्क उतार लें।

यह अर्क प्रातः, दोपहर और शाम को ५-५ तोला की मात्रा में पीने से पक्षाघात में निश्चय ही लाभ होता है। इसके साथ ही सारे शरीर पर धीरे-धीरे महानारायण तेल की मालिश करना चाहिए। दिन में दो बार किसी विश्वस्त कम्पनी जैसे बंगाल केमिकल, वैद्यनाथ या डाबर का कैस्टर आयल केश तेल सिर पर मलना चाहिए। यह उपचार और औषधि-क्रम निरन्तर ३ माह तक चलना चाहिए। महीने में २ बार विरेचन जैसे अरंड तेल या त्रिफला चूर्ण का देना चाहिए, ताकि पेट साफ रहे।

पथ्य में—गेहूँ-चने की रोटी, लहसुन की चटनी, हरी सब्जी, पालक, टमाटर का रस, परवल की तरकारी केवल मिर्च डालकर दें। चावल न दें। गौ का दूध रोगी जितना पचा सके दिया जा सकता है।

परहेज—गर्म मसाला, वादी की चीजें, लाल मिर्च, तेल, खटाई आदि।

६६. वृक्क (गुर्दे) की पीड़ा पर

अडूसे के पत्तों का स्वरस ६ माशे तथा शहद ६ माशे मिला-कर पीने से और अडूसे के पत्ते पानी में पकाकर पेड़ू पर भाफ लेने और सेंक करने से गुर्दे की पीड़ा शीघ्र दूर होती है।

६७. सिरदर्द में

(१) मामूली जुकाम से यदि सरदर्द हो तो वासा के पत्तों के क्वाथ में शहद और मिश्री मिलाकर पीने से जुकाम पककर शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है और सर की पीड़ा दूर हो जाती है।

(२) वासा के फूलों को छाया में सुखाकर महीन चूर्ण कर लें। १ तोला चूर्ण में थोड़ा गुड़ मिलाकर ४ गोलियाँ बना लें। सिरदर्द प्रारम्भ होते ही एक गोली खिला देने से तत्काल लाभ होता है।

(३) अडूसा के छाया में सुखाये हुए पत्तों को चाय की तरह पकाकर पीने से सर दर्द या शिरोरोग की कोई भी व्यथा शीघ्र दूर हो जाती है। स्वाद के लिए इस चाय में थोड़ा सेंधा नमक मिला सकते हैं।

(४) अडूसे की जड़ २ तोला लेकर भलीभाँति पीस-छान-कर २० तोला दूध में ३ तोला मिश्री और १५ नग कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से शिरोरोग सरदर्द, चक्कर या भारीपन, नेत्ररोग, शूल, हिचकी, खाँसी आदि विकार दूर होते हैं।

नारी रोग

६८. नष्टार्त्तव

१२-१३ वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर प्राय: ४५ वर्ष की आयु तक–गर्भावस्था के दिनों और बच्चे को दूध पिलाने के समय के अतिरिक्त, प्रतिमास नियत समय पर ३ से ५ दिनों तक

मासिक रजस्राव हुआ करता है। यह प्राकृतिक नियम है। नियमित समय पर मासिकधर्म न होना अस्वस्थता का लक्षण है।

दुर्बलता, रक्ताल्पता, शीत तथा अन्य कारणों से मासिकधर्म बन्द हो जाने को नष्टार्त्तव या रजावरोध कहा जाता है। यदि रज-स्राव रुका हुआ हो तो अडूसा-पत्र, मूली के बीज, गाजर के बीज ६-६ माशा लेकर आध सेर जल में पकाकर चतुर्थांश क्वाथ बना-कर पुराना गुड़ मिलाकर कुछ दिन पीने से मासिकधर्म खुलकर होने लगता है।

६९. बन्ध्यत्व दोष-निवारणार्थ

आध पाव तिल के तेल में आध पाव अडूसे के पत्तों का क्वाथ डालकर पकावें। पानी जल जाने पर उतारकर ठंडा होने पर तेल छानकर रख लें। जो ऋतु-स्नाता स्त्री नित्य कई दिनों तक, तोले-डेढ़ तोले की मात्रा में इस तेल को पीती है, उसका बन्ध्यत्व दोष दूर होकर गर्भ धारण कर सकने में सक्षम हो जाती है।

७०. गर्भिणी के शोथ में

अडूसा, आँवला, मुलेठी, मुनक्का, शालपर्णी, श्वेत चन्दन— प्रत्येक ८-८ तोले लेकर कूटकर ८ सेर जल में पकावें। जब एक सेर जल शेष रहे तो उतारकर छान लें। फिर उसमें एक सेर गोदुग्ध और एक सेर नारियल का जल मिलायें और आध सेर चावल डालकर पकायें। जब भात बन जाय तो उतारकर ठंडा होने पर गर्भिणी स्त्री को खिलायें। इस प्रकार ३ दिन इसी

प्रकार का भात बनाकर खिलाने से गर्भिणी के शरीर का शोथ समाप्त हो जाता है।

७१. गर्भिणी के ज्वर कामला पर

अडूसा, पिठवन और वरियारी का काढ़ा बनाकर पीने से गर्भिणी के ज्वर, कामला, सूजन सब ठीक हो जाते हैं। यह काढ़ा रक्त-पित्त में भी लाभदायक है।

७२. प्रसूत रोगों में

प्रसवोपरान्त अनुचित आहार-विहार से प्रसूता को ज्वरादि विकार हो जाते हैं।

वासा के ६ माशे पत्तों के रस में समान भाग घी मिलाकर दिन में कई बार पिलायें। एक सप्ताह में किसी भी प्रकार का प्रसूतारोग हो, समूल नष्ट हो जाता है।

प्रदर

अप्राकृतिक भोजन, भोजन पर भोजन, अजीर्ण, मद्यपान, गर्भस्राव, अति मैथुन, अति परिश्रम, शोक, चिन्ता, क्रोध आदि उद्वेगों, दिन में सोने, चोट लगने, सीढ़ियों पर वेग से चढ़ने इत्यादि कई कारणों से प्रदर रोग उत्पन्न होता है। बिना ऋतु-काल के स्त्री की योनि से विभिन्न रंगों का स्राव होना, शरीर में पीड़ा और हड़फूटन प्रदर के लक्षण हैं।

वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज प्रदर ४ प्रकार का होता है।

योनि से शुष्क फेनयुक्त कष्टसहित मांस के धोवन जैसा स्राव होना वातजप्रदर का लक्षण है। नीला, पीला, सफेद या लाली लिये अधिक मात्रा में गर्म रक्त निकलना, शरीर में दाह होना—पित्तजप्रदर का लक्षण है। जिसमें गोंद की तरह लसदार पीला अथवा गुलाबी पानी के समान स्राव हो उसे कफज प्रदर समझना चाहिए। शहद या घी के समान, मुर्दे की गन्ध जैसा स्राव होना त्रिदोषज या सन्निपातज प्रदर का लक्षण है।

पित्त और रक्त के विकार से रक्त प्रदर होता है। शरीर का टूटना, रक्त निकलने के कारण कसक होना, दुर्बलता, मूर्च्छा, भ्रम, आँखों के आगे अंधेरा छा जाना, शरीर में जलन होना, प्यास अधिक लगना, भूख न लगना, अग्निमांद्य और अजीर्ण आदि उपद्रव रक्तप्रदर के हैं।

७३. श्वेत-प्रदर

(१) अडूसे की जड़ की छाल का रस ६ माशा, ६ माशा शहद मिलाकर प्रातः-सायं चाटने से श्वेत-प्रदर दूर होता है।

७४. रक्त-प्रदर

वासापत्र-स्वरस १ तोला में १ तोला मिश्री मिलाकर पीने से रक्त-प्रदर आराम होता है।

७५. पित्त-प्रदर

(१) केवल वासापत्र-स्वरस १ तोला पीने से पित्तज-प्रदर ठीक होता है।

(२) अड़ूसा-पत्र रस में शहद और मिश्री (या चीनी) मिलाकर दिन में ३—४ बार पीने से पित्त-प्रदर नष्ट हो जाता है।

७६. श्वेत रक्त-प्रदर

अड़ूसा के पत्ते, आक का फूल, दारु हल्दी, रसौंत, नागरमोथा, बेलगिरी, लालचन्दन—इन सबका काढ़ा बनाकर शहद मिलाकर प्रातः-सायं पीने से लाल तथा सफेद दोनों प्रकार के प्रदर रोग नष्ट होते हैं।

७७. सर्व-प्रदर

(१) अड़ूसा के पत्ते, दारूहल्दी, रसौंत, नागरमोथा, लालचन्दन, बेलगिरी और चिरायता—सब समान भाग ले, जौकुट चूर्ण कर २॥ तोला चूर्ण लेकर आध सेर जल में पकाकर क्वाथ बनाकर शहद मिलाकर पीने से सब प्रकार के प्रदर नष्ट होते हैं।

(२) अड़ूसे की जड़ की छाल, चिरायता, बेलगिरी, रसवत, दारुहल्दी, नागरमोथा, लालचन्दन और कमल —सबका जौकुट चूर्ण २॥ तोला लेकर आध सेर जल में पकाकर चतुर्थांश क्वाथ बनाकर पीने से सब प्रकार के प्रदर रोग में लाभ होता है।

७८. पित्त-प्रदर और योनिदाह में

अड़ूसा के पत्तों का रस, गिलोय का रस, आमलों का रस तीनों ६-६ माशा लेकर मिश्री या चीनी मिलाकर पीने से पैत्तिक प्रदर और योनिदाह में यथेष्ठ लाभ होता है।

७९. रक्त-प्रदर तथा प्रदर-पीड़ा

अडूसा के पत्ते या जड़ की छाल, दारु हल्दी, रसौत, नागर-मोथा, बेलगिरी, शुद्ध भिलावा, चिरायता और कुमुदिनी—सब समान भाग ले जौकुट कर २॥ तोला दवा एक पाव पानी में क्वाथ करे। आधी छटाँक जल शेष रहने पर शहद मिलाकर प्रातः-सायं रुग्णा को पिलायें। इस क्वाथ के पीने से तीव्र रक्त-प्रदर तथा प्रदरजन्य वेदना शीघ्र ही शान्त होती है।

८०. त्रिदोषज-प्रदर

अडूसा के पत्ते या जड़ की छाल, त्रिफला, मजीठ, जटामासी, वच और देवदारु—समान भाग ले, चूर्ण बनाकर रख लें। १ तोला चूर्ण पावभर पानी में पकाकर अष्टमांश क्वाथ बनाकर, शीतल होने पर छानकर काढ़े के बराबर दूध तथा ३ माशे शहद मिलाकर प्रातः-सायं एक सप्ताह पीने से त्रिदोषज-प्रदर दूर होता है।

८१. योनि से रक्तस्राव होने पर

स्त्रियों के योनि-मार्ग से होनेवाले रक्तस्राव में, यदि वह गर्भस्राव से सम्बन्धित न हो ५ वासा-पत्रों को पीसकर थोड़ी मिश्री मिलाकर पिलाने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। अत्यधिक रक्तस्राव की दशा में १०—१० मिनट में इसका प्रयोग करने से रक्तस्राव अवश्य बन्द हो जाता है।

ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त—नाक, मुख से रक्तस्राव होने पर, यदि वह आघातजन्य (चोट लगने) न हो तो भी वासा के इस प्रयोग से पर्याप्त लाभ होता है।

८२. योनि से दुर्गन्धि आने पर

अडूसा के पत्ते, नीम के पत्ते, परवल कड़वे, बच, फूल प्रियंगु—इन सबका चूर्ण योनि में रखने से योनि की दुर्गन्ध और पिच्छिलता (लिब-लिबापन) दूर होता है। साथ ही अडूसा के पत्ते डालकर पकाये हुए जल से योनि का प्रक्षालन (डूस) करने से शीघ्र ही लाभ होता है।

८३. योनिकन्द रोग

योनिकन्द रोग में स्त्री की योनि के मुख-द्वार पर मांस-पिण्ड उत्पन्न हो जाता है, जिससे स्त्री मैथुन-क्रिया में असमर्थ हो जाती है।

अडूसा, असगन्ध और रास्ना के क्वाथ से सिद्ध किया हुआ घृत पीने, साथ ही दन्ती, गिलोय और त्रिफला के क्वाथ से योनि-प्रक्षालन (डूस) करने से योनिकन्द रोग दूर होता है।

८४. योनि रोगनाशक मोदक

अडूसा की जड़ की छाल, जीरा सफेद, जीरा काला, पीपल, कलौंजी, सुगन्धित वच, सेंधानमक, जवाखार और अजवायन—इन सब द्रव्यों को कूट-पीसकर चूर्ण कर लें। फिर इन्हें घी में थोड़ा भूनकर चीनी मिलकर लड्डू बना लें। अग्निबलानुसार इन लड्डुओं को खाने से योनि के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

८५. सुख प्रसव के लिए

(१) प्रसव-वेदना आरम्भ होने पर अडूसा की जड़ को पानी में घिसकर योनि में लेप करने से या रखने से बिना कष्ट के बालक सुखपूर्वक उत्पन्न हो जाता है।

(२) अड़ूसा की जड़ को सेंधानमक और शहद के साथ पीसकर नाभि पर लेप करने से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है।

(३) शनिवार के दिन अड़ूसा के वृक्ष को निमंत्रण दे आवे और रविवार को प्रातःकाल उसकी जड़ लाकर रख ले। इस जड़ को लाल धागे में बाँधकर तथा साथ ही साथ इस जड़ को घिसकर नाभि के नीचे और योनि में लेप कर देने से वेदना-रहित शीघ्र सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है।

बाल-रोग

८६. बच्चों के डब्बा रोग पर

डब्बा रोग या पसली चलना बच्चों का एक कष्टदायी और घातक रोग है। इसमें बच्चे को ज्वर और खाँसी आती है; पसली दब जाती है और बच्चा कष्ट के साथ ऊर्ध्व साँस लेता है।

(१) अड़ूसा के पत्ते, करेले के पत्ते, पका नागरपान तथा जामुन की छाल—इन सबका रस निकालकर और उसमें वच घिस कर बच्चे को दिन-रात में ५-६ बार ४-५ दिन चटाने और सुरक्षा-पूर्वक बच्चे को रखने से बच्चे का डब्बा रोग आराम होता है।

(२) पुटपाक रीति से अड़ूसा के पत्तों का निकाला हुआ स्वरस २० बूँद, सुहागे की खील २ रत्ती तथा शहद ४ माशे—एकत्र मिलाकर, बालक की अवस्थानुसार दिन में ४-५ बार चटाना चाहिए और अड़ूसा के पत्तों को पीसकर गरम कर छाती पर लेप करना चाहिए। इससे छाती में जमा हुआ कफ अलग हो जाता है। इस प्रकार २—३ दिन के प्रयोग से बच्चे का डब्बा रोग दूर हो जाता है।

८७. शीतला (चेचक) पर

चेचक के प्रतिकारार्थ—यदि पास-पड़ोस में चेचक का प्रकोप हो तो बच्चे को इसके प्रकोप से वचाने के लिए अड़ूसा का एक पत्ता और मुलहठी लगभग ३ माशा—दोनों को कूटकर २० तोले जल में पकाकर अष्टमांश क्वाथ कर नित्य एक बार पिलाने से चेचक के आक्रमण की आशंका नहीं रहती।

(२) शीतला के निकल आने पर, अड़ूसा के रस के साथ शहद मिलाकर पिलाने से शीतला के विकार नष्ट हो जाते हैं तथा इसी प्रयोग से कफज मसूरिका दूर होती है।

८८. नकसीर पर

नाक से खून गिरने पर अड़ूसा के पत्तों का रस नाक और कान में डालने से नाक से खून गिरना बन्द होता है।

८९. गर-विष निवारणार्थ

मूर्खा स्त्रियाँ अपने पतियों को वश में करने की मिथ्या-भ्रान्ति में पड़कर पसीना, मासिक धर्म का रज-रक्त और अपने या दूसरे शरीर का मैल भोजन आदि खाद्य-पदार्थों में मिलाकर खिला देती हैं। इसी प्रकार शत्रु भी ऐसे ही पदार्थ भोजन में मिलाकर खिला देते हैं। इन पसीना, रज-रक्त आदि गन्दे पदार्थों को 'गर' कहते हैं। पसीना और रज इत्यादि गर खा जाने से शरीर पीला पड़ जाता, निर्बलता आती, ज्वर आता, गर्भ-स्थलों में पीड़ा होती तथा धातुक्षय और सूजन होती है।

वृषादि-घृत—अड़ूसा, नीम और परवल तीनों के पत्तों के काढ़े में, हरड़ को जल में पीसकर मिला दो और इसके साथ ही घी पका लो। वृषादि घृत के खाने से गर-विष निश्चय ही शान्त होकर तज्जन्य विकार नष्ट हो जाते हैं।

चर्म रोग

९०. खुजली, रूक्षता और शोथ में

अड़ूसा के कोमल पत्तों को थोड़ी, हल्दी और गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से खाज, दाद, अण्डकोषों की खुजली और शोथ तथा उकवत (एक्जिमा) में लाभ होता है।

साधारण खुजली तो अड़ूसा के पत्तों को डालकर उबाले हुए पानी से स्नान करने ही दूर हो जाती है। शरीर की दुर्गन्धि पर—वासापत्र रस में थोड़ा शंख-चूर्ण मिलाकर लगाने से शरीर की दुर्गन्ध दूर होती है।

९१. शरीर की रूक्षता में

शरीर में अधिक रूक्षता (रूखापन, खुश्की) हो तो अड़ूसा के पत्तों का रस ६ माशा—एक पाव दूध में डालकर २ तोला गरम घी और ५ तोला मिश्री मिलाकर पीने में १५ दिन में शरीर की रूक्षता नष्ट हो जाती है।

९२. अरुंषिका (बराही) में

कफ और रक्त के विकार तथा कृमियों के संयोग से प्रायः बच्चों के सिर में अनेक मुँहवाली अत्यन्त क्लेदयुक्त फुंसियाँ हो

जाती हैं, इनको संस्कृत में अरु षिका और बोलचाल की भाषा में बराही कहते हैं।

अडूसा, नीम और परवल के पत्ते पीसकर लेप करने से सर की यह दुर्गन्धित फुंसियाँ अच्छी हो जाती हैं।

९३. फोड़े पर

फोड़ा उठते ही प्रारम्भ में ही वासा के पत्तों को जल में पीसकर लेप करने से फोड़ा बैठ जाता है और कोई कष्ट नहीं होता।

९४. विसर्प (सुर्खमादा) में

पित्त-विकार और रक्त-दोष से शरीर में दाह, खाजयुक्त लाल चकत्ते पड़ जाने को संस्कृत में 'विसर्प' और ठेठ ग्रामीण भाषा में सुर्खमादा कहा जाता है।

अडूसा-पत्र, नीम-पत्र, परवल, गिलोय और सोंठ—इन सबका काढ़ा बनाकर पिलाने से विसर्प रोग से हुआ अम्लपित्त, मंडल, चकत्ते और दाह नष्ट हो जाते हैं।

९५. कुष्ठ में

(१) अडूसा की जड़ और मुण्डी दोनों को घोट-छानकर शहद मिलाकर नित्य पीने से कुष्ठ में लाभ होता है।

(२) पंचतिक्त घृत—वासा का पंचांग, कटेरी का पंचांग, गिलोय, नीम की छाल, पटोलपम—प्रत्येक द्रव्य ४०–४० तोला जौकुट चूर्ण कर २५॥ सेर जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें और इसमें १२८ तोला गौघृत और कल्कार्थं १६ तोला त्रिफला-चूर्ण मिला सबको घृत-पाक-

विधि से पकाकर घृत सिद्ध कर लें। घृत सिद्ध हो जाने पर छान-कर सुरक्षित रख लें। ३ माशे से ६ माशे तक यह घृत मिश्री के साथ चाटकर ऊपर से गोदुग्ध पियें। इस घृत का कुछ दिनों तक पथ्यपूर्वक सेवन करने से समस्त प्रकार के कुष्ठ, वात, पित्त और कफज रोग, दुष्ट व्रण, कृमिरोग, अर्श, ज्वर, कास आदि रोग नष्ट होते हैं। रक्त और चर्म-दोष के कारण उत्पन्न विकारों में इसका उपयोग विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है।

९६. कखराली (कखौरी या कखवारी)

बाँह के नीचे बगल में होनेवाली गाँठ में बड़ी पीड़ा और तकलीफ होती है। इसमें अडूसा, नीम, पुनर्नवा तथा खरेंटी के पत्ते जल में पीसकर उनका लेप करने से कखराली बैठ जाती है तथा उसकी पीड़ा शान्त होती है।

९७. मतली और वमन

अडूसा की छाल जौकुट कर तथा जल में भिगोकर इस जल को घूंट-घूंट पिलाने से मतली और वमन में अवश्य लाभ होता है।

९८. चूहे भगाने के लिए

अडूसे के पत्तों को बकरी के मूत्र में पीसकर, एक चूहे को पकड़कर उसे इस लेप से लिप्त कर घर में छोड़ दें तो और सब चूहे घर से भाग जाते हैं।

९९. फसल के कीटों को दूर करने के लिए

अडूसा के पत्ते कूटकर ६-८ आठ घंटे पानी में पड़ा रहने दें। फिर उस पानी को फुहारे या स्प्रेयर द्वारा मक्खी या माहूँ-

ग्रस्त अथवा अन्य कीटों से ग्रसित फसल पर छिड़कें तो कीट नष्ट हो जाते हैं। इसे अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इसमें तमाखू के पत्तों का पानी में भिगोकर छाना हुआ रस और कलई चूना मिला देना और भी उपयोगी है।

अड़ूसा की सूखी पत्तियों का चूर्ण आध सेर ५ सेर जल में भिगोने के बाद उपरोक्त रीति से प्रयोग करने से भी वही कीट-विनाश कार्य सम्पन्न हो जाता है।

१००: गाय-बैलों आदि के उदर-कृमि या उदर-व्याधि में

पशुओं के चारे में अड़ूसे के पत्ते कुट्टी कर मिलाकर खिलाने से पशुओं के पेट के कीड़े मर जाते हैं और उनकी अन्य उदर-व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

———

हमारे अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

डॉ० सुरेशप्रसाद शर्मा द्वारा लिखित पुस्तकें—

एलोपैथिक पुस्तकें—

१—**इन्जेक्शन**—इसमें सूई लगाने के तरीके और इसके सम्बन्ध में जानने योग्य सभी बातों के अतिरिक्त सभी प्रकार के इन्जेक्शनों जैसे—पेनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमायसिन, औरियोमायसिन, डाइक्रिस्टेसिन आदि का वर्णन सरल ढंग से दिया गया है।

२—**एलोपैथिक चिकित्सा**—पुस्तक नौ अध्यायों में लिखी गयी है। प्रथम चार अध्यायों में 'विषय-प्रवेश', 'शरीर-विज्ञान', 'रोग निदान' सम्बन्धी आवश्यक बातों और नवीनतम आविष्कृत औषधियों का वर्णन क्रमशः दिया गया है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत।

३—**मिक्श्चर**—मिक्श्चर बनाने की विधि और १८५ रोगों पर परीक्षित ३५० नुस्खों का वर्णन दिया गया है। साथ ही पेटेन्ट दवाओं और विभिन्न रोगों पर चलने वाले इन्जेक्शनों के नाम भी दिये गये हैं।

डॉ० शिवदयाल गुप्त, ए० एम० एस० द्वारा लिखित पुस्तकें—

४—एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—हिन्दी और देशी भाषाओं में सर्वप्रथम प्रामाणिक पुस्तक।

५—नेत्र रोग-विज्ञान (एलोपैथिक)—प्रथम नेत्र-रचना, उसकी कार्यक्षमता आदि विषयों पर सुन्दर विवेचन किया गया है, जैसे निकट दृष्टि-ज्ञान, दूर-दृष्टि-ज्ञान आदि।

६—मॉडर्न ट्रीटमेंट दो भाग। ७—स्त्रियों के रोग तथा उनकी आधुनिक चिकित्सा। ८—वृद्धावस्था के रोग तथा उनका प्रतिकार। ९—एलोपैथिक सफल औषधियाँ—इस पुस्तक में सल्फा ग्रूप की सभी औषधियाँ, सीबाजाल, एम० बी० ६९३, सल्फाट्रायड आदि, कालाजारनाशक, मलेरियानाशक, कुष्ठनाशक, कृमिनाशक आदि औषधियों का प्रयोग तथा पी० ए० एस०, वेसीट्रैसिन, आयलोटायसिन और अब तक की निकली हुई जीवाणुरोधक औषधियों का वृहद् वर्णन सरल ढंग से दिया गया है।

१०—मल, मूत्र, रक्तादि परीक्षा, एलोपैथिक। ११—धात्री विज्ञान। १२—एलोपैथिक पेटेन्ट मेडिसिन्स—ले०—डॉ० अ० ना० पाण्डेय। १३—एलोपैथिक पेटेन्ट चिकित्सा—ले०—डॉ० अ० ना० पाण्डेय। १४—ज्वर चिकित्सा। १५—

माडर्न एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—ले०—डॉ० रामनारायण सक्सेना। १६—अभिनव शवच्छेद-विज्ञान—प्रोफेसर श्री हरिस्वरूप कुलश्रेष्ठ द्वारा लिखित—दो भाग। १७—सरल दन्त-विज्ञान। १८—सर्जरी (सामान्य शल्य चिकित्सा)। १९—बाल रोग चिकित्सा। २०—एलोपैथिक पाकेट गाइड। २१—माडर्न डायग्नोसिस। २२—माडर्न सिलेक्टेट मेडिसिन्स। २३—ब्लड-प्रेशर—ले०· डॉ० केशवानन्द नौटियाल। २४—स्टेथोस्कोप परीक्षा—ले०—केशवानन्द नौटियाल।

२५—मेडिकल सर्टिफिकेट—(हि० अ०)।

२६—लेबिल बुक। २७—चर्म रोग चिकित्सा। २८—विटामिन्स २९—सल्फोनामायड और एण्टीबायोटिक्स। ३०—मासिक विकार। ३१—जननेन्द्रिय रोग चिकित्सा। ३२—नासा, गला एवं कर्ण रोग चिकित्सा। ३३—संकटकालीन प्राथमिक चिकित्सा। ३४—सफल आधुनिक औषधियाँ।

होमियोपैथिक पुस्तकें—

१—होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका रेपर्टरी सहित—मूल लेखक—डॉक्टर विलियम बोरिक—कैलिफोर्निया के डाक्टर विलियम बोरिक की होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका

जगतप्रसिद्ध चिकित्सा-ग्रन्थ है जो लगभग एक शताब्दी से दुनियाभर में प्रचलित एवं समादृत है। मेडिकल पुस्तक भवन का इसी पुस्तक का प्रस्तुत हिन्दी रूपान्तर अत्यन्त सावधानीपूर्वक अविकल रूप में छापा गया है और इसे पाठकों का व्यापक समर्थन प्राप्त है।

२—फॅरिंगटन की कम्परेटिव मेटेरिया मेडिका।

लेखक—डॉ० सुरेशप्रसाद शर्मा

३—होमियो पारिवारिक चिकित्सा। ४—होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका। ५—होमियो गृह-चिकित्सा। ६—होमियो बाल चिकित्सा। ७—होमियो पशु चिकित्सा। ८—होमियो शिशु चिकित्सा। ९—पुरानी बीमारियाँ। १०—होमियो भेषज सम्बन्ध-तत्त्व एवं क्रिया स्थितिकाल।

११—होमियोपैथिक चिकित्सातत्त्व के मुख्य निर्देशक लक्षण। १२—रोगी की सेवा और पथ्य। १३—बायोकेमिक चिकित्सा। १४—स्त्री-रोग चिकित्सा (सचित्र)। १५—होमियो इन्जेक्शन चिकित्सा। १६—भारतीय औषधावली तथा होमियो पेटेन्ट मेडिसिन्स। १७—होमियो पॉकेट गाइड। १८—बायोकेमिक पॉकेट गाइड। १९—बायोकेमिक रेपर्टरी। २०—नेश रीजनल लीडर्स। २१—होमियो टायफायड चिकित्सा।

२२—होमियो न्यूमोनिया चिकित्सा। २३—होमियो थायसिस चिकित्सा। २४—थर्मामीटर। २५—एनीमा और कैथेटर। २६—रोग-लक्षण-संग्रह। २७—बायोकेमिक रहस्य। २८—तुलनात्मक होमियो औषधि चुनाव। २९—एलेन्स की नोट्स। ३०—जार फोर्टी ईयर्स प्रैक्टिस। ३१—सफल होमियो प्रेस्क्रिप्शन। ३२—पीयर्स की तुलनामूलक मेटेरिया मेडिका।

आयुर्वेदिक पुस्तकें—

१—आयुर्वेद विज्ञान। २—नाड़ी रहस्य। ३—आधुनिक आहार-विहार द्रव्यगुण-विज्ञान एवं चिकित्सा।

ग्रामसीरीज प्रकाशन—

१—नीम चिकित्सा विधान। २—तुलसी चिकित्सा विधान। ३—आयुर्वेदिक घरेलू चिकित्सा। ४—बबूल चिकित्सा विधान। ५—मधु चिकित्सा विधान। ६—कब्ज या कोष्ठबद्धता। ७—सुलभ देहाती नुस्खे। ८—प्लीहा रोग चिकित्सा। ९—वृक्ष-विज्ञान चिकित्सा। १०—मवेशियों की घरेलू चिकित्सा। ११—जन-स्वास्थ्य-विज्ञान। १२—जल-

चिकित्सा विधान। १३—जल चिकित्सा। १४—नीबू चिकित्सा विधान। १५—छाछ चिकित्सा विधान। १६—लेहसुन और उसके सौ उपयोग। १७—केला और उसके सौ उपयोग। १८—ढाक (पलास) और उसके सौ उपयोग।

ग्रामिणों के उपयोगी पुस्तकें

पुस्तकों का नाम	मूल्य
१—नीम चिकित्सा विधान	१-६०
२—तुलसी चिकित्सा विधान	१-६०
३—आयुर्वेद घरेलू चिकित्सा	३-६०
४—बबलू चिकित्सा विधान	१-२५
५—मधु चिकित्सा विधान	१-२५
६—नींबू चिकित्सा विधान	१-६०
७—छाछ चिकित्सा विधान	१-००
८—कब्जया कोष्ठ बद्धता	२-००
९—मवेशियों की घरेलू चिकित्सा	४-००
१०—सुलभ देहाती नुक्से	२-५०
११—लौहा चिकित्सा	१-२५
१२—जल चिकित्सा	१-२५
१३—लहसून और उसके सौ उपयोग	२-५०
१४—केला ,, ,, ,,	२-५०
१५—ढाक ,, ,, ,,	२-५०
१६—प्याज ,, ,, ,,	२-५०
१७—मूली ,, ,, ,,	२-५०
१८—मिट्टी ,, ,, ,,	२-५०
१९—स्वप्न दोष चिकित्सा	४-५०
२०—नाड़ी रहस्य	२-००
२१—वृक्ष विज्ञान चिकित्सा	३-००
२२—आधुनिक आहार विहार चिकित्सा	८-००